रजत शिखर

श्री सुमित्रानंदन पन्त

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ पटना-६

राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०,
८ फैज़ बाज़ार, दिल्ली-६
द्वारा प्रकाशित

●

प्रथम संस्करण
सं० २००८ वि०

●

कॉपीराइट
श्री सुमित्रानंदन पंत

●

मुद्रक
लीडर प्रेस, प्रयाग

मूल्य १०.००

विज्ञप्ति

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	४	प्रीत	प्रीति
३३	२२	ईर्ष्या	ईर्ष्या
४२	५	घरा	धरा
४२	११	सुधर	सुघर
५६	१९	सुन	सुर

विज्ञप्ति

रजत शिखर मे मेरे छः काव्य रूपक संगृहीत है, जो आकाशवाणी से सक्षिप्त रूप में प्रसारित हो चुके है। इन रूपकों मे चौबीस मात्रा का अतुकात रोला छंद प्रयुक्त हुआ है, जिसमे नाटकीय प्रवाह तथा वैचित्र्य लाने के लिए यति का क्रम गति के अनुरूप ही बदल दिया गया है एवं तेरह ग्यारह के स्थान पर दो बारह अथवा तीन आठ मात्रा के टुकड़ों पर रखना अधिक आलापोचित सिद्ध हुआ है। पद के अंत मे दो गुरु मात्राओ के स्थान पर लघु गुरु या दो लघु मात्राओ का प्रयोग कथोपकथन की धारावाहिकता के लिए अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है। पद्य नाट्य में लय की गति को अक्षुण्ण रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पढते समय प्रत्येक चरण के अत में यथेष्ट विराम दिया जाय। इति—

१५ जुलाई '५१]

श्री सुमित्रानंदन पत

पंत जी — दिनकर जी

प्रियवर
दिनकर को

अनुक्रम

पृष्ठ

रजत शिखर

रजत शिखर मनुष्य की अंतश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है। इस काव्य रूपक मे जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल संचरणों का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। मानव मन के विकास की वर्तमान स्थिति मे ऊर्ध्व के अवरोहण तथा समतल के आरोहण पर बल देकर दोनों मे समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

स्त्री पुरुष स्वर
युवक साधक
युवती
मनोविश्लेपक
राजनीतिज्ञ
विस्थापित

(प्राणोन्मादन वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

वन मर्मर की हरी भरी घाटी यह सुदर,
कल कल बहती जहाँ मुखर प्राणों की सरिता
आवेशो के फेनिल मानस पुलिन डुबा कर !
यहाँ प्रसारो मे हँसता जीवन स्वर्णातप
शोभा के ताने बाने मे सतरँग गुफित,
मृगजल सी शत छाया इच्छाएँ लहराती
रि. स्वर नूपुर बजा बीथियो मे ममता की !

यहाँ बनैले फूलों की मांसल सुगंध पी
मारुत उन्मद लोटा करता हरीतिमा के
घने उभारो मे, गर्तो में, इद्रिय मादन !
मुग्ध स्वर्ण प्रभ भृग गूँजते वीरुध जग की
कुसुम योनियाँ चूम गध रज, गर्भ दान दे !
यहाँ तितलियाँ रग अग भगिमा दिखाती
वन अप्सरियो सी फिरती शोभा इगित कर,

मौन ज्योतिरिगण निशीथ के अंधकार में
चमक झमक उठते प्रकाश के सकेतो-से

स्त्री स्वर

नाम हीन आशाऽकाक्षाएँ यहाँ अतद्रिल
इद्रजाल बुनती अपलक स्वप्नों के मोहक :
अमिट लालसा तृष्णाओं की चल केचुलियाँ
रेगा करती गरल मदिर क्षण फन फैलाए !
यहाँ प्रीति ज्वाला, सुदरता हाला पीकर
लिपटी रहती सघन मोह तम के कुजों मे :
और सुनहले रहस पक मे धँस जीवन के
मन के मुग्ध चरण बँध जाते अलस श्राति मे !

(आत्मोन्नयन सूचक वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

दूर वहाँ, उस पार, मर्मरित अतरिक्ष के
ऊपर, नभ का नील चीरते, शुभ्र रजत के
शिखर दिखाई पड़ते जो स्थिर ज्योति ज्वार-से
तड़ित चकित जलदो के खुलते अतराल से,—
मौन, अटल, उत्तुग, आत्म गरिमा में जागृत,
शाश्वत, अमर, असीम,—परम आनद लोक-से,—
स्वर्ग क्षितिज को उठे धरा विश्वास स्तभ-से—
जहाँ चेतना का प्रकाश हँसता दिग् विस्तृत,
स्वच्छ हिमानी सा शशि की किरणो से प्रहसित,
उज्वल, स्निग्ध, प्रशांत,—जिसे जगती का कल्मष
स्पर्श नही कर पाता तम तृष्णा के कर से:—

स्त्री स्वर

वहाँ पहुँचने को चिर व्यग्र, महत्त्वाकाक्षी,
एक युवक, जो रहता छाया की घाटी में,
जग जीवन के सघर्षण से श्रात क्लात हो,
सोच रहा, मै कैसे प्राप्त करूँ महिमोज्वल
मानस की उस निभृत रुपहली ऊँचाई को,
जो निष्कप शिखा सी उठ कर, महानील को
आलोकित करती अपने अत प्रकाश मे !
जहाँ विचरते सुरगण गोपन सुख से प्रेरित
स्वप्नों की पगध्वनि से कपित कर दिगत को;
जहाँ प्रेरणाओ के स्वर्णिम मेघ बरसते
मर्म स्वरो की रजत फुहारो मे अजस्र झर !

(वाद्य सगीत : आकाश गीत)

शुभ्र काति रही बरस
शुभ्र शाति रही हरस,
शाश्वत शोभा असीम
दिशि पल से रही विहस !

गात गधर्व अमर
झरते स्मित स्वर्णिम स्वर,
तन्मय तन मनस् प्राण
अकथित आनंद परस !

चेतना रही निहार
अपलक दृग आर पार,

रजत शिखर

जयति, सत्य ज्योति शिखर,
अत स्मित रहे विलस !

अमृत कलश चंद्र भाल,
विजित अचित् व्याल माल,
स्फुरित शीर्ष चेतनोर्मि,
जयति, शक्ति पुरुष स्ववश !

(तानपूरे के स्वर)

युवक

बरस रहा आत्मस्थ स्वरों का नि स्वर निर्झर
अधिमानस के नभ से, सुधा स्रवित कर अतर,—
किन्तु हाय, मै सौरभ मृग सा गध अध हो
भटक रहा प्राणों की इस मोहित घाटी मे :
जिसकी छलना के दिङ् मायावी प्रसार मे
खो खो जाती मन की गति, चल इद्रिय सुख के
पंखों मे छटपटा, श्रात श्लथ हो अतृप्ति से !

हँस हँस यौवन की सतरँग आशाऽकांक्षाएँ
इंद्रधनुष दीपित वाष्पों की भाव भूमि मे
विवश मोह लेती मानस को, निज रोमांचित
रंग पाश मे बाँध, लिपट कंटकित लता सी !
चारो ओर बिछे है मोहक जाल अगोचर
आवेशों की रत्नच्छायाओ के गुफित;
कोयल मुखर स्वरों से मर्माहत करती उर,
फूल मौन छवि से मोहित कर लेता अंतर;

रूप हीन सौरभ अदृश्य मृदु रजत सूत्र से
खीच चेतना को कर देती व्याप्त बहिर्मुख ! —

हास अश्रु की घाटी यह हँसमुख फूलो की
पलको से झरते रहते मोती के आँसू :
धरती का चातक प्रेमी आकाश कुसुम का,
अध चकोर अँगारे चुग निज तृषा बुझाता,
गध मधुप गाता कॉटो में फूल के लिए !!

(मनोमोहक वाद्य संगीत)

इच्छाओं की मर्म गुजरित इस द्रोणी मे
जब प्रवृत्ति पथ, रत्नखचित आकाश सेतु सा,
अपनी शत रगो की छायाएँ बखेर कर
अपलक कर देता लोचन : मुग्धा चपलाएँ
स्मित कटाक्ष से पुलकित कर देती तन, चचल
ज्वालाओं के स्पर्शो से प्राणों को उकसा :
शरद चॉदनी दुग्ध फेन सा कपित उर ले
स्वप्नों की गुजित चापो से निशा कक्ष को
मुखरित कर देती सहसा जब : नव वसत श्री
फूलों के मृदु अवयव शोभा मे लपेट कर
अँगडाई भरती, वन सौरभ की सॉसो से
समुच्छ्वसित कर हृदय : और उन्मद स्वप्नो की
मोहकता से भरी नवल यौवन की अगणित
आशाऽकांक्षाए हर लेती आत्मबोध को,—
तब, जाने, मानस में, नीरव ज्योति चरण धर,
स्नेह मधुरिमामयी कौन, नव उषा किरण सी,

करती सहज प्रवेश, हृदय मे जगा अभीप्सा,—
मुग्ध, आत्म विस्मृत कर अंतर को क्षण भर मे !
खुलता हो अतरतम का चिर रुद्ध द्वार ज्यों
खुलता उर का रहस व्यथामय मर्म प्रीत व्रण
विद्रुम विगलित दिव्य मौन लालिमा लोक सा,
करुणा शीतल करता जो लालसा दाह को !

(करुण वाद्य सगीत)

कैसे मैं जीवन के रजित कर्दम से उठ,
भाव तृषित मृग मरीचिका से मोह मुक्त हो,
आरोहण कर रजत चेतना सोपानों पर
पहुँचूँ अतर्मन की उस प्रज्वलित भूमि तक,
जिसके शांत शिखर मोहित करते भू का मन,
चिर हिल्लोलित मानस के हर्षातिरेक-से !

(द्विविधा सूचक वाद्य संगीत)

अह, फिर स्वर्ण रजत वाष्पो के सतरगी पट
आच्छादित कर लेते अंत शुभ्र शिखर को,—
चपलाओ के विभ्रम से कर चकित मनोदृग !
फिर फिर प्राणो की अभिलाषा कनक भुजग सी
लिपट, बाँध देती उत्सुक बढते चरणों को !
हँसमुख गर्त निगल जाते उच्चाकाक्षा को,
अतल मग्न कर उर प्रातर को अंधकार मे !
धीरे धीरे झींगुर सी फिर रेग कामना
जड विषाद को कँपा, जगाती सुख की तृष्णा,—
इस प्रकार नित चलता रहता जीवन अभिनय
और बदलते रहते चल पट छायातप के !

(कोयल की कूक)

लो, जीवन की नव मजरित प्रथम वसंत सी
प्राण सखी आ रही इधर ही, राह भूल कर !
या गत स्मृतियो से प्रेरित हो ? कोयल उसका
अभिनंदन करता है उत्सुक मर्म कूक भर !
कुहू, कुहू,—लहरो-से उठते स्वरावेश मे
मेरे प्राणो की उत्कठा बरस रही है !

मेघो के अंबर मे शशि की रजत तरी ज्यों
तिरती स्वप्नो से रँग रँग कर शिखर फेन के,
मेरे प्राणों मे उतराती प्रेयसि की स्मृति
निज किशोर लीला का चचल मुग्ध हास्य भर !
विरल जलद से स्वर्ण बिम्ब सा उसका स्पदित
गौर वक्ष है सतत झलक उठता स्मृति पट मे !
आज उतर आई वह ज्यों साभार धरा पर
नव मधु की इच्छाओं के पंखो मे उड़ कर !

(दूर से प्रवाहित गीत के स्वर)

नव वसत क्या लाया ?
प्राणो की घाटी मे फिर
फूलो का पावक छाया !

सुन कोयल का दाहक कूजन
मधुपो का उन्मादक गुजन,
स्वप्नो ने अंतर् मर्मर भर
कैसा गीत जगाया !

रँग रँग की इच्छाएँ हँस हँस
मन को पागल करती बरबस,
पग पग पर रुकती मैं उन्मन
किसने मुझे लुभाया !

घिरते आज क्षितिज मे क्यों घन
सौरभ के, भावो के मादन,
चल वसत के नभ मे मथर
सावन क्यो घिर आया

अधरों मे नव कलियों की स्मित,
पलको मे स्मृति की झर अविदित,
मन समीर के पखों मे,
उर मे समुद्र लहराया ?

(युवती का प्रवेश)

युवती

नव वसंत का अभिवादन देने आई हूँ !

युवक

प्रणय मुखर कोयल को अपना दूत बना कर
स्वयं वसत श्री आई है नव शोभा में
मेरी भग्न कुटी के चिर विस्मृत प्रांगण मे !
स्वागत करता हूँ प्रिय ऋतुओं की रानी का !

युवती

पिक की वाक्पटुता से उपकृत है वसंत श्री !

युवक

तुम्हे ज्ञात है, मेरे जीवन के निकुंज में
तुम्ही प्रथम मधुऋतु आई थी, जब प्राणो के
पल्लव, मर्मर भर, स्वप्नो से सिहर उठे थे !
मदिरारुण लपटो मे उर की आकांक्षाएँ
फूट पडी थी, सहसा तुमको घेर चतुर्दिक्,
मौन मुकुल को घेरे रहते ज्यों नव किसलय !
फूलो की ज्वालाओं सी अतर प्रांतर में
सुलग लालसाएँ अवचेतन की चिर संचित
विहँस उठी थी आवेशो के नवल दलो मे !

युवती

बीता हुआ सदैव रहस स्मृति से रजित हो
मोहक बन जाता है ! तब वास्तव का दशन
विस्मृत क्षण हो जाता, स्मृति के पट मे केवल
इच्छा का आनद स्पर्श सचित रह जाता !

युवक

भूल गई तुम उस नव यौवन के वसत को ?
प्राणो के पावक के उन्मादन वैभव को ?
तब जाने किस निभृत गहन के अंतराल से
अध समीरण उठ, सौरभ के पखो से छू,
मानस को कर जाता था सौन्दर्य उच्छ्वसित,
भावो के श्लथ सागर को आनद तरगित !

रोमांचित हो उठता था तन, कण्टक वन सा,
जाने किसके मधुर स्पर्श से !

युवती

नही जानती !

युवक

जब भी आती थी तुम इस अपलक कुटीर मे
वह मधु की मदिरा पी,किसलय लोहित दृग हो,
प्रणय कुज बन जाती थी, कल केलि गुजरित !
कितने ही गोपन वसत, पावस, रहस शरद
हमने साथ बिताए है एकात प्राण-मन,
सूक्ष्म अदृश्य सूत्र मे बँध अज्ञात प्रणय के !
हाथ हाथ मे लिए, तरुण स्वप्नो के पग धर,
विचरण करते थे हम निर्जन वन वीथी चुन,
लहर समीरण से अभिन्न, सौरभ-से कलि-से !

मर्मर शीतल तरुओं की कंपित छाया मे
बैठ ग्रीष्म की अलस दुपहरी मे हम प्रतिदिन
प्रणय निवेदन के सुख की मादन विस्मृति मे
तन्मय हो जाते थे ! वर्षा मे श्यामल घन
घिर कर यौवन के दिगत मे, गुरु गर्जन भर,
आकुल कर देते थे अंतर, आकांक्षा की
गहरी छाया डाल धरा पर : विद्युत् अपने
क्षण इगित से प्रणय भीरु उर को अनजाने
शकित कर देती थी—

युवती

भावी की लेखा सी !

युवक

कितनी बार शरद के रेखा शशि की मैंने
एक और मुख की रेखाओ से तुलना कर
उसे सदोष बताया है, तुमको कूँई के
अपलक नयनों का विस्मय अर्पित कर सादर...!
और तुम्हारी वेणी के चिर कोमल तम में
गूँथ कभी जब मधु के मुकुलो की सद्य. स्मिति
मैं मन ही मन तुम्हे हृदय स्वप्नो के मुकुलित
प्रीति पाश मे भर लेता था, तब प्रसन्न मन,
तुम अनिमेष दृगो से मेरी ओर देख कर
मद हास्य से निज गोपन स्वीकृति देती थी!—
कह दो, तब क्या वह केवल सात्वना मात्र थी,
या कोमल उर का सुमधुर उपचार मात्र था ?

युवती

जो भी समझो, वह केवल कैशोर प्रणय था !
अभी नही छूटी क्या मुग्ध तुम्हारे मन से
मेहदी की लाली सी वह कैशोर भावना
जिसने निज यौवन उन्मुख प्रच्छन्न राग से
था अजान रँग दिया कपोलों की ब्रीड़ा को ?
उस अबोधता को प्रमाण मानोगे क्या तुम ?...
स्पर्श नही कर सकी तुम्हारे भावुक उर को
हाय, वास्तविकता जीवन की नित्य बदलती !

युवक

स्पर्श नही कर सका तुम्हारे चंचल मन को
हाय, हृदय का सत्य, कभी जो नही बदलता !!

युवती

आज प्रेम विषयक इन मध्य युगी, शुक जल्पित
उद्गारो की कीर्ति तुम्हारे मुख से सुनकर
मेरा मन अवसन्न, हृदय उद्विग्न हो उठा !

युवक

तब क्यों तुम मुझको फिर से विस्मृत वसत की
याद दिलाने आई, ऋतु शृगार सजा नव ?
वह क्या केवल क्रूर व्यग्य, उपहास मात्र था ?
या नारी उर की स्वाभाविक निर्दयता थी ?
जिस निगूढ निर्ममता की पाषाण शिला से
मायावी विधि ने निर्मित की नारी प्रतिमा,
उसमें मृगजल शोभा, छाया कोमलता भर ?
तुम्हे नही क्या ज्ञात, प्रणय चेतना हृदय को
रिक्त पात्र सा जब रस सूना कर जाती है,
तब उसको ये उद्दीपन के कुसुमित साधन,
सुख के रजित उपादान दुखमय लगते है,
और सुधाधर की स्मिति भी विष बरसाती है ?

युवती

मुझे ज्ञात है, ये दुर्बल उच्छ्वास मात्र है,
तुम परिणीत नही इन थोथे विश्वासो से !

युवक

कहते हैं, कामिनी कनक साधक के पथ के
बाधक है ! पर लक्ष्मी के चल पद क्षेपों से
मेरा काचन का मद कब का चूर्ण हो चुका,
जो स्त्री का यौवन टुकडो में क्रय कर सकता,
ब्रीडा की लाली को डुबा सुरा प्याली में
शोभा को अवगुठन हीन बना सकता औ'
शोषित कर सकता है सख्याओ के जग को ! !

किन्तु शेष थी अभी कामिनी की मृदु ममता,
वह भी विधि ने हँसते हँसते आज कुचल दी
निर्दय अगुलियों से तोड निरीह फूल सी,
उसकी रगों की पखडियाँ छिन्न भिन्न कर
धरा धूल में, जिसमें सब कुछ मिल जाता है !

कनक काम के ही पावक का, तप पूत कर,
रूपातर करना होगा पर नव--मानव को,
उसे वासना धूम, राग की दाहकता से
क्षार मुक्त कर, परिणत कर शीतल प्रकाश मे :
धूम अग्नि का न्याय प्रकृति का नव सस्कृत कर !
काम शुद्ध काचन की प्राणोज्वलता से ही
जीवन शोभा की प्रतिमा हो सकती निर्मित !

युवती

मन.शास्त्र कुछ और बताता है, पर जो हो...
मै उन्मन सी हो, उनसे मिलने आई थी

सुहृद् तुम्हारे है अभिन्न जो, मानव मन के
सूक्ष्म तत्व विश्लेषक, अपने गहन ज्ञान से
मेरी सुप्तात्मा को जगा जिन्होंने सहसा
नव चेतन कर दिया, उसे नव दृष्टि दान दे !
अवगाहक सा उतर अचेतन के निस्तल मे
गुह्य सत्य की निधियाँ जो लाए है ऊपर,
आर पार अनुशीलन कर मानस विधान का !

युवक

समझ गया मै ! ...दूर हो गया मेरा संशय !...
नया केन्द्र मिल गया तुम्हारी मधुर वृत्ति को,
नया हृष्ट आधार हृदय की प्रणय क्षुधा को !
सदा रही आवेग शील, चिर अभिनव प्रिय तुम,
छिपा रही हो मुझ से अब उर की दुर्बलता
मनोज्ञान का उस पर अचल डाल रुपहला !
लो, सुखव्रत आ रहा इधर ही, तुम्हे खोजता !

(मनोविश्लेषक सुखव्रत का प्रवेश)

सुखव्रत

नमस्कार! ...ओ, तुम भी यहाँ उपस्थित हो तब !

युवक

इन्हें खींच लाया पहिले ही मन का आग्रह !

युवती

सुनती थी मै, दीप तले रहता अँधियाला,
वह सच निकला . तुमने अपने बाल्य सखा को
अधकार ही मे रक्खा, अपने प्रकाश से
उनको वचित कर,—क्या यह आश्चर्य नही है ?

सुखव्रत

तुमने नही सुना, साधक, कवि, प्रेमी, पागल
वायवीय तत्वों के बने हुए होते है :
विधि ने उनका हृदय सूक्ष्म कल्पना द्रव्य से
स्वप्न ग्रथित है किया : नित्य वे स्वर्गधरा के
मध्य भावना पख मारते रहते निष्फल !
मेरे बाल्य सखा भी साधक है : संभव है,
प्रेमी भी : इनको उत्तेजन शील शिराएं
सदा ज्वार भाटाओं पर उतराती रहती !
जीवन और जगत के प्रति ये अनासक्त है,
और, अपरिचित भी शायद !—

युवती

क्या विडंबना है !
मै इन पर बचपन से ही ममता रखती हूँ,
पर ये मुझ को नही समझते !

सुखव्रत

मुझे ज्ञात है,
प्रणय दान तुम इन्हें नही दे सकी, कदाचित्

हृदय समर्पण करना तुमको इष्ट नही था,—
इसमे इनका दोष नही है : अवचेतन की
प्रबल शक्ति से ये संतत अनभिज्ञ रहे है !
उच्च ध्येय से पीडित है इनकी सुप्तात्मा,
बोधात्मा पर पित्र्य प्रभाव रहा छुटपन से,
अहमात्मा नित हीन भाव से रही प्रतारित .
दमित भावना मार्ग खोजती क्षुधापूर्ति का,
जिससे सघर्षण रहता नित चेतन मन मे !

युवती

कैसी अंतर्दृष्टि तुम्हे है मानव मन पर !

सुखव्रत

ऐसी स्थिति मे आत्म पलायन के स्वप्नो पर
मोहित हो, उन्नयन खोजता व्यक्ति निरंतर :
वास्तवता से कट कर वह काल्पनिक तुष्टि के
ऊर्ध्व गर्त मे गिर पड़ता, छाया सुख सस्मित !

युवती

स्वत स्पष्ट है ! ...किन्तु प्रेम कैसे होता है ?
क्यों बँध जाते युगल हृदय अज्ञात सूत्र मे ?

सुखव्रत

प्राण चेतना अपने ही मौलिक नियमों से
संचालित करती मानव की रागवृत्ति को,

सजातीयता प्राणों की आकर्षित करती
युग्मों के हृदयो को गोपन प्रणय पंथ पर !
प्रेम चयन कर, सग्रह कर होता कृतार्थ नित,
अंध समर्पण मात्र नही वह आवेगों का
अवचेतन परिचालित करता उसकी गति विधि
स्तभित इच्छाए विमुक्त कर, पिड द्रवित कर,
कुठाओं को मिटा, रुद्ध ग्रथियाँ खोल शत
गुह्य वासनाओं की, आत्म दमन से गुफित
निश्चेतन मन का रहस्य चिर दुरवगाह्य है !

युवक

तब क्यों शुक की भाँति रटे हम अवचेतन के
उपभेदों को, उच्छृंखलता से प्रेरित हो,
यदि उन पर अधिकार नही है चेतन मन का ?

सुखव्रत

सामाजिक भी एक पक्ष है मन.शास्त्र का,—
जिन मूल्यो पर रागात्मक सबध मनुज के
निर्धारित होगे भविष्य मे, उनको नूतन
मन शास्त्र देगा, अवचेतन के समुद्र को
कूल मुक्त कर, रूढि रीति के प्रतिबधों को
ज्वार मग्न कर, उच्छल प्राणो के प्रवाह को
आवर्तो से गंड शून्य

युवती

इसमे क्या संशय !

सुखव्रत

पचहत्तर प्रतिशत मनुष्य के उद्वेगों का
कारण, रागात्मक प्रवृत्ति का अंध दमन है!
थोथी, रुग्ण, अवैज्ञानिक आचार भित्ति पर
प्राणभावना का है भवन बना समाज का,
रुद्ध द्वार, कुंठित गवाक्ष : नीचे निस्तल स
उठते शत दुर्गंध मलिन उच्छ्वास विषैले,
जिनसे रहता सिन्धु क्षुब्ध मानव का अतर!

हमें मुक्त करनी है पहिले काम चेतना
युग युग की कृमि जटिल ग्रथियों से जो पीड़ित,
रागद्वेष, कुत्सा कलक की कृपण दृष्टि से
उसे बचाना है, गत नैतिक कोण बदल कर!

युवती

घोर क्रांति मच रही आज मानव के भीतर!

सुखव्रत

जब प्राणों का स्वास्थ्य बहेगा मुक्त वेग से
नव प्रणालियों से सामूहिक सहजीवन की,
नवल भावनाओं, प्रवृत्तियों का शोणित तब
स्वतः प्रवाहित होगा मासल चेतन मन में,—
द्वन्द्व चेतना का रुपांतर कर देगा जो!—
और युगों के शमन दमन, उन्नयन पलायन
उड़ जाएंगे प्राणों के झझा प्रवेग में!

अवचेतन के अतल सिन्धु से उठ जीवन का
रग ज्वार मज्जित कर देगा जन भू के तट!
शत सहस्र फन खोल पुन निद्रित निश्चेतन
मनोराग की वशी के स्वर सकेतो पर
नाच उठेगा—कर विराग के प्रति विरक्त मन!
यह भावात्मक देन अनोखी है इस युग की,
मानस विश्लेषण विज्ञान जिसे देता है!

युवक

बहुत सुन चुका अधः प्राण सदेश तुम्हारा,
निश्चय ही अब नरक द्वार खुलने वाला है!
निश्चेतन के अधकार मे युग का भू-मन
भटक रहा है, नैतिक मूल्यो का प्रकाश खो!
अधःपतन मे मुक्ति नही है! ऊर्ध्व गमन ही
मुक्ति द्वार है!...मोह मुक्त हो गया आज मन!

रग पख वासना प्रणय का मोहक गुठन,
मुख पर डाले, प्रकट हुई थी मेरे सन्मुख
मधुर रूप धर स्त्री का, निज छाया सा अस्थिर,—
यौवन के स्वप्नो का खोल गवाक्ष अर्धस्मित!
मै जाने कब, अनुभव शून्य, मधुर तृष्णा के
हँसमुख कर्दम मे फँस गया, नियति परिचालित!
नारी की पावन शोभा को देख न पाया,
केवल निज इच्छाओ के मोहक वेष्टन से
रहा खेलता, छाया को उर से चिपका कर!

युवती

कैसा है दुर्भाग्य—

सुखव्रत

मांस की दुर्बलता का!

युवक

लज्जित हूँ मै। क्षमा चाहता हूँ दोनो से!
स्पर्धा के दशन से पीडित, सवेदन क्षम,
इद्रिय स्पर्शों से मर्माहत, भूल गया था
मै अपने को, मानव आत्मा के गौरव को।

रोमांचक है हाय, इद्रियो की यह घाटी,
करुणाजनक कथा है प्राणों के प्रदेश की।
घोर अँधेरी नगरी निस्तल निश्चेतन की,
मुक्त कामना तत्र राज्य प्यासे असुरो का।!
देवासुर सग्राम क्षेत्र है मानव का मन,
प्राण भावना समर स्थल है जिसका शाश्वत,
एक रोज मानव को भू की अध गुहा मे
ऊर्ध्व ज्योति की विजय ध्वजा फहरानी होगी,—
तभी मुक्त होगी नि सशय प्राण चेतना!

ऊर्ध्व मान्यताओं का ही सामूहिक जीवन
समतल गत संचरण,——धरा के निश्चेतन से
अविरत सघर्षण कर, नित ऊपर उठ कर जो
सामाजिक भू जीवन में सगठित हुआ है!—
यही ऊर्ध्व इतिहास सभ्यता का है निश्चय!

सुखव्रत

यही करुण आख्यान रुद्ध आकाक्षा का भी !

युवक

यह सच है, सप्रति, मानव के चेतन मन पर
आकर्षण है अध प्राण अवचेतन मन का,
युग्म भावना लक्ष्य आज दृग आक्षेपों की,
नर नारी का सख्य, मर्म है निभृत कुज का,
गुह्य कक्ष का, अंध विवर का,—जनरव दूषित !
उसे उदार, विशद दृग बनना है, विकास प्रिय
मानद सीमाओ को स्वीकृत कर भूपथ की !
दूत दूतिकाओं की, पटु परकीयाओ की
पृष्ठ भूमि कटु बदल, प्रणय के अभिसारो की !
मानवीय सस्कार श्रेणि मे, यौवन हर्षित
प्राणो के रग स्फुरणों को मधुर स्थान दे !
निम्न प्राणचेतना एक दिन ऊर्ध्व गमन कर
रागात्मक भू स्वर्ग रचेगी स्वप्न जाल स्मित,
भले उपेक्षित रही रूक्ष नैतिकता से हो,
अपने आरोहण पथ मे वह देव योनि बन
बरसाएगी भू पर रत्नस्मित आभाए
श्री शोभा, विश्वास प्रीति, आनद ज्योति की ! ...
व्यापक ऊर्ध्वस्थल पर उठकर प्राण शक्ति ही
मनुष्यत्व मे परिणत होगी सुर आकांक्षित !
नव नारी नर, विभा रश्मि से चिर अंतः स्मित,
विचरेंगे जग मे, कृतार्थ कर भू विकास पथ !

सुखभ्रत

धन्यवाद ! ये पुण्य कल्पनाए है केवल !

युवती

हाय, पुण्य इच्छाए पंख अश्व भी होती !

युवक

छँटते जाते है अब धूमिल वाष्पों के धन,
हटती जाती स्वर्णिम नीलारुण छायाए,
खुलते जाते अतरिक्ष के अतर्मुख पट,—
और निखरने लगे शुभ्र निर्वाक् शिखर फिर
ऊर्ध्व प्राण, अतश्चेतन सोपान से खडे,—
समाधिस्थ हो उठा पुन हो बहिर्व्याप्त मन !

इस मरकत द्रोणी के हँसमुख सम्मोहन से
मोह मुक्त हो रजत अभीप्सा अंतस्तल की
आतुर है उड़ने को उन्मेषित पखों में
मन· क्षितिज के पार चेतनातप के नभ मे,—
जहाँ विचारो का अनुगुजन लय हो जाता !

अतिम तृण हट गया, कट गया दुर्गम पर्वत ! ...
अतल गर्त नीचे, ऊपर दुर्लध्य शिखर है !
नीचे इंद्रिय रौद रही निर्मम चरणों से,
दुरारोह निर्जनता ऊपर द्वैत शून्य है !—
सहज एक-बहु की स्थिति का आकाक्षी है मन !

जल जल उठते शीत स्वच्छता से इच्छा पग,
कँप उठता उर, हरित ऊष्मता के अभाव से;
ज्यों ज्यों आरोहण करता मन मौन शांति में
धरती का क्रदन ही ऊपर स्वर सगति पा
बन जाता सगीत सुनहली झकारो का!
मानव ही सुर मे परिणत हो जाता उठकर!
अन्न प्राण मन हँस उठते चेतनाऽलोक मे,—
सर्वशक्तिमय दिव्य तमस है जड धरणी का!

महाश्चर्य है! वही सत्य है! ऊपर है जो
शिखर, वही नीचे प्रसार है! एक सचरण
मात्र! ऊर्ध्व हो अथवा समदिक्, दोनो ही पर
अन्योन्याश्रित है निश्चय! दोनों के ऊपर
एक अनिर्वचनीय रहस्य, हृदय रोमांचक!

(जनरव)

किंतु, कौन आ रहे इधर वे गीत रुदन भर?

(दूर से प्रवाहित समवेत गीत)

कहाँ मिले स्वर्गवास,
घोर त्रास, घोर त्रास!

एक स्वप्न गया टूट,
एक नीड़ गया छूट
आस पास मची लूट
मृत्यु कर रही विलास!

किधर बह रहा समीर
अतल सिन्धु जल अधीर,
कहाँ मिले, दूर तीर,
भँवर मे पड़े प्रयास !

जा रहा किधर उदास
मनुज आज चिर निराश,
यह विकास या विनाश ?
बदल रहा युग लिबास !

बीत गई काल रात
बज्र गिरा अकस्मात्,
खडा शिखर पर प्रभात—
हृदय मे न पर हुलास !

(विस्थापितों का प्रवेश)

विस्थापित

विस्थापित है, हम धरती के विस्थापित है !
शरणार्थी, नव भू जीवन के शरणार्थी है !
उफ, जिन काले कृत्यो के अँधियाले से हम
किसी तरह बाहर निकले वे अकथनीय है !
मार काट, हत्या, निर्दयता, कटु नृशंसता,
पैशाचिक उद्दाम कामना का खर तांडव !
नारकीय प्रतिहिंसा, घोर घृणा का उत्सव !
नग्न वासना नृत्य, प्रेत ज्यों अवचेतन के

अट्टहास भर, बाहर सकल निकल आए हों
धरती की रज योनि चीर कर, बलात्कार कर!
बलात्कार, व्यभिचार, मृत्यु के मुख का कटु सुख!!

कुछ स्वर

उफ, किसने चीरा कोमल कदली स्तभों को,
स्वर्ण कदुको को लूटा,...फूलों की कपित
डालो को धर निर्दयता से तोड मरोडा!
पागलपन था, पागलपन सिर पर सवार तब!
कहाँ मर गई थी लज्जा सज्जा की ममता?
कहाँ उड़ गए थे आँखो से फूलो के रँग?
बिखर गई थी उर की स्वप्न भरी पखडियाँ,
अतर की कोमलता थी पाषाण बन गई!!

शील सभ्यता, दया मधुरता, श्री सुदरता
कहाँ मिट गए जीवन के उपचार थे मधुर?
ढेर हो गए ढेर, सभी वीभत्स दृश्य बन,—
भाँय भाँय करता था तब भूतल श्मशान सा,
साँय साँय करता था उर निर्जन मरुथल सा!

कुछ स्वर

आग, आग! भगदौड! लीलती लपटो का जग!
कान जल रहे, अब भी सुनकर कान जल रहे!
लूट पीट, छीना झपटी ......हम भूत प्रेत है,
सप्रदाय के कट्टरपथी भूत प्रेत है!
रूढि रीतियो के धर्मांध पिशाच प्रेत है!!

कायरता, निष्ठुरता, मानव की बर्बरता,
प्रतिनिधि है मानव धरती की बर्बरता का !
भूमिकप था वह मुर्दो के सप्रदाय का,
सभा गया अब धरती की घायल छाती मे ! !

युवती

कान जल रहे, अब भी सुनकर कान जल रहे !

सुखव्रत

एक अचेतन की तरग के प्रबल घात से
बालू का सा दुर्ग, यान मानव जीवन का
तहस नहस हो गया, तिमिगल पुच्छ पात से! ...
सब प्रकार के सामूहिक ऊहापोहों का,
राग द्वेष, ईर्ष्या स्पर्धा का, कलह क्रोध का,
धर्मो वर्गो के विरोध का, रीति नीति गत
विद्रोहों का—एक मात्र गोपन कारण है
अवचेतन का उद्वेलन, कुठित तृष्णाएँ,
रुद्ध अतृप्त पिपासाएं वासना गुहा की !

रागात्मक संतुलन नही आएगा जब तक
प्राणों के जीवन में, तब तक मानव जग में
नैतिकता के मुख से गुठन नही हटेगा !
धर्मो के सिहासन में भूकंप रहेगा !
सामाजिक संबंध सजीव न हो पाएगे,
धरती के अगों का कर्दम धुल न सकेगा !

बौना, नाटा, ठिगना, कुबड़ा मानव जीवन
लँगडाएगा भूपर, दब कर पाप भार से!

(राजनीतिज्ञ का प्रवेश)

राजनीतिज्ञ

शाति, शाति! मै धरती के निर्वासित जन को
फिर स्थापित करने आया हूँ, पुनर्वास दे!
प्रथम भूख है, काम नही . मै उदर क्षुधा से
पीडित जीवन ककालो को अर्थशास्त्र का
लोकतत्र मय सजीवन देने आया हूँ!

एक स्वर

नेता हैं क्या आप?

राजनीतिज्ञ

मात्र जन सेवक हूँ मै!
मेरे पास अनेक नई योजना बनी है,
कार्य रूप मे जिनको परिणत भर करना है!
अन्न,वस्त्र, आवास,—कमी है यद्यपि इनकी,
मनु के सुत को किंतु सदा धीरज धरना है!
वैसे कागज़ की है वनी अनेक योजना!

कुछ स्वर

हमे ज्ञात है, हमे ज्ञात, तुम बहुमत से नित
चलते, अपना नही कभी रखते कोई मत,
परिवेशो के सतत बदलते मूल्यो पर ही
अवलंबित रहते, अपने है मान न मौलिक.

रजत शिखर

नित्य परिस्थितियो की ही चेतना तुम्हारी
अपनी भी चेतना रही, तुमको बाहर का
कार्य भार है घोर,—स्वत. चेतना शून्य तुम
भीतर से बस सूने, कोरे अभिनेता हो!

कुछ स्वर

हम: उन्मूलित है, उच्छेदित इस जगती के,
निज स्वजनो से दूर, परिजनो से चिर वचित!
नष्ट हो गया सब विनाश के भृकुटि पात से,
हम.खँडहर है महाध्वस के, भीषण पजर!
खेत बाग, घर आँगन, दारा सुत, स्त्री सपद
आँखो के सन्मुख फिरते छायाभासो-से,
दु स्वप्नों से प्रेत ग्रस्त, हम घोर जागती
निद्रा है, जो टूट टूट जाती फिर भय से!
कुचल रही है बज्र हृदय को निर्दयता से
दु स्मृति की दारुण छायाए, कटु प्रहार कर!

कुछ स्वर

क्या होगा अब, क्या होगा?...अह, उस मिट्टी का,
उन ईंटों का? कहाँ खोगया दृढ धनत्व वह,
ठोस रूप वह?—जो झझा झड, लू अधड मे
अविचल रहता था, अब सहसा पिघल गया क्यो?
रिक्त वाष्प बन कर उड़ गया अचानक कैसे?
रूप: रेख आकृति सब ओझल कहाँ होगई?
क्यों सूना, खोखला हो गया जग क्षण भर मे!
दु:स्मृति है केवल..हम भी अपनी दु.स्मृति है!!

युवक

एक ओर मानव मन, जीवन सीमाओं को
अतिक्रम कर, उत्सुक है नव चेतना स्वर्ग में
आरोहण के हित . अभिनव आनद मधुरिमा
ज्योति प्रीति का मगल धाम बनाने भू को:
और दूसरी ओर धरा के अध गर्भ से
निश्चेतन की क्रूर शक्तियों की कल्लोलें
मृत्यु नृत्य कर जीवन शोभा के प्रागण मे
मग्न कर रही जन धरणी को महाध्वस मे,
घृणा द्वेष, हिंसा स्पर्धा के रक्त पक मे!
घोर विरोधी, प्रतिस्पर्धी बन अडिग खडे हैं
पुन स्वर्ग पाताल, परीक्षा हित मनुष्य की!
मानवता पिस रही युगल निर्मम पाटों में,
स्वर्ग नरक पर जय पानी होगी मनुष्य को!

कुछ स्वर

हम फिर से घर द्वार बसाएँगे जन भू पर,
हम मानव परिवार बढाएँगे जन भू पर!
मृत्यु ज्वार पर चढ कर फैल समस्त धरा मे,
नव जीवन सचार कराएँगे हम भूपर!
एक वृत्त हो रहा समापन जग जीवन का
हम फिर नव ससार बनाएँगे जन भूपर!
कलह क्रोध, ईर्ष्या स्पर्धा का गरल पान कर,
हम जीवन का भार बँटाएगे जन भू पर!

आधि व्याधि का, रोग शोक का, दैन्य जरा का
हम फिर से उपचार कराएगे जन भू पर!
उजड गया जो फिर उसको आबाद कर नया,
हम नव जीवन ज्वार उठाएँगे जन भू पर!

कुछ स्वर

चुप हो जाओ, चुप हो जाओ!... छायाएँ है
चली आ रही, दल बाँधे,—जीते मनुजों की
भीड चीरती! छिन्न भिन्न अवयव है उनके,
टूटे हाथ पैर, हिलते हड्डी के ढाँचे,—
माया ममता और अधूरी तृष्णाओ का
बोझ पीठ पर लादे वे सब भटक रही है
अधकार मे राह टोह, लोहू से लथपथ,
तार तार जीवन छायाएँ,—बुड्ढे, बच्चे
नौजवान,... सब दल पर दल है चले आ रहे!

लँगडातीं, गिरती पडती, कँपती छायाएँ
अगो को छटपटा रही दुख की आँधी मे;
टपक रहे है घाव, खौलता रुधिर बह रहा,
जीवन की इच्छाओं से, सपनों से लोहित...
मा बहनें है, मा बहनें वे,... जो पीड़ा से
चीख रही!... दुख की कराह से कान फट रहे,
धरती की गूगी पुकार से हृदय छिद रहा!
बहरा है आकाश! दिशा भी बहरी हैं क्या?
बहरा क्या हो गया विश्व!... यह असहनीय है!!

युवती

अह, कराह से कान फट रहे, हृदय छिद रहा,
भाले की सी तीव्र नोक से मर्म बिध रहा !

युवक

हाय, निखिल सभ्यता और भू जीवन की ही
गाथा है शोणित से पंकिल, हृदय विदारक !
विस्थापित है हम सब, भूले विस्थापित है,
छूट गया कब कहाँ न जाने देश हमारा,
हम धरती पर विस्थापित है, निर्वासित है !
यहाँ खोजने आए सब उस स्वर्ण धरा को,
यहाँ मिटाने आए हम भय रोग जरा को !
लहरो पर लहरे उठती धरती के तम की,
तह पर तह खुलता जाता नभ का प्रकाश है !
पुन. उतर आया मैं धरती की खाई में
अंजलि सी जो बनी ज्योति को संचित करने :
पुनः उतर आया मैं प्राणो की घाटी में
आकुल है जो अग्नि बीज गर्भित होने को !

सुखव्रत

स्वागत है, स्वागत है !

युवती

सुनने दो, सुनने दो !

युवक

अतस् ही मे नहीं, बाह्य से बाह्य क्षेत्र में
मै अनुभव कर सकूँ अनिर्वचनीय सत्य के
अमृत स्पर्श का . जन मन के भावों के स्तर पर,
जीवन की प्रत्येक दिशा, प्रत्येक रूप मे!
मै अतिक्रम कर सकूँ बाह्य भीतर के अंतर,
यही प्रार्थना है अतर्यामी से मेरी!

सुखव्रत

भाव प्रवण उर का यह नूतन परिच्छेद है!

युवक

इस घाटी मे, अपनी ही छाया के पीछे
भटक रहे जन: छोटे मन के छोटे मोटे
स्वार्थों मे अनुरक्त: परस्पर की स्पर्धा से
उन्नति में रत: एक दूसरे के परिभव से
जीवन सक्षम. इसीलिए कुठित मानव मन
जीवन विमुख, विरक्त, तिक्त हो उठता जग मे!
यहाँ बरसता नही स्नेह हर्षित नयनो से,
सहज समव्यथा छलक नही उठती हृदयो मे,
इस घाटी के रहन सहन मे श्री शोभा का
घोर अभाव खटकता मन को" मानव उर में
यहाँ अभी तक प्रेम नही हो सका प्रतिष्ठित
मानव के प्रति, आदर जीवन गौरव के प्रति!
रिक्त प्रतिष्ठा भार झुकाए हुए रीढ को!!

भर भर उठता हृदय घृणा, थोथे विराग से
श्रात क्लांत अनचाहा मानव जब घर घर मे
सुनता नित्य कलक कथा, कुत्सा, पर निन्दा !

युवती

यही रूप है आज धरा की वास्तवता का !

युवक

साधक अब मै नही,—नम्र आराधक भर हूँ !
साधक मेरे पूजनीय है, ऊर्ध्वारोही,—
समतल गामी जगत प्रणत है जिनके पद पर !

ऊर्ध्व शुभ्र, एकाग्र शिखर पर खड़े चिरतन
देख रहे है जग के स्वामी भू के उर्वर
इस बहुमुख फैले प्रसार मे, सतजल कल्पित
अपनी ही आनद तरगित रहस प्रकृति को !
फूलो की चोली पहने, लहरा हरितांचल,
चूर्ण नील कुतल छहरा दिक् सौरभ विश्लथ,
घुटनो के बल बैठ, उच्छ्वसित हृदय सिन्धु ले,
अपलक आयत दृग जो देख रही ऊपर को
अमृत प्रीति वरदान हेतु जीवन साथी से :—

'अपने मथर दिग् विस्तृत आवर्त शिखर मे
धूम असीम छटा मे अथक अनत काल तक,
फिर फिर तन्मय होती निज अतः प्रकाश में
प्राप्त करूँ चैतन्य अमर मै ज्योति शक्ति मय !

ऊपर से नीचे अपार शोभा सुंदरता
हर्ष प्रीति की आभाएँ नित रहे बरसती,—
अन्न प्राण मन के त्रिदलो को विकसित करती!

युवती

कैसी उच्च विराट् कल्पना है धरती की!

युवक

आराधक बन सकूँ प्रणत मै दिव्य ज्योति का,
जो इस मृण्मय धरा दीप की अमर शिखा है,
जिसकी करुणा किरणों के अत स्पर्शो से
इस द्रोणी का तम स्वप्नो मे दीपित होता!
हम सब विस्थापित है: हम सब उत्थापित है!
पुन. बसाएगे हम धरती की घाटी को,
नव स्वप्नों के स्रष्टा, नव जीवन शिल्पी बन,
मानवीय शोभा गरिमा, आनंद मधुरिमा
ज्योति प्रीति का स्वर्ग बना जन मगल भू को!

युवती

मैं भी हाथ बटाऊँगी इस लोक कार्य के
आयोजन मे साथ आपके, श्रद्धानत हो!
मेरा मन सदेह रहित होगया आज चिर
आश्वासित हो!...ऊपर है प्रकाश का द्योतक,

नीचे निस्तल अंधकार का! निबले मन के
आवेगों को हमे सगठित करना होगा
ऊर्ध्वज्योति मे ! ... सयम ही वास्तविक मुक्ति है !
प्राणों का सतुलन मुक्ति है मानव मन की,
ऊर्ध्व चेतना का जो क्रीड़ा स्थल है उज्वल !

युवक

यही मर्म है, मै कृतज्ञ हूँ !

सुखव्रत

प्रवंचना है,
यह प्रवंचना ... ख़ूब मनोहर छलना निकली
तुम मायामयि, अवचेतन की मोहक तृष्णा ...

युवती

मनुज स्वय अपने मन को छलता रहता है,
मुक्त हो गया मेरा मन अब उस छलना से !

सुखव्रत

मुक्ति नही है आत्म पलायन, मधुर मृत्यु है !
जाता हूँ मै, घोर पलायन के प्रमाद से
मानव मन को सद्य मुक्त करने का व्रत ले !

(प्रस्थान)

युवक

आज नई मानवता के शुचि प्राण सूत्र में
नर नारी का हृदय बँध रहा लोक कर्म हित,

मिलन शांति स्मित, विरह अकातर, प्रीति समर्पित,
नई चेतना से स्पंदित, सद्भाव संगठित !

आओ, हम दोनो मिल, प्राणो की घाटी मे
विस्थापित मानव का फिर घर द्वार बसाएँ,
शुभ्र रजत शिखरों की ऊर्ध्वग दिव्य शांति ले,
अंबर की व्यापकता, सागर की गंभीरता,
गिरियो का चिर धैर्य, अथक सरिता की गति ले,
भू जीवन के उपादान नव आज जुटाएँ,
आओ, हम नव मानव का घर द्वार बसाएँ !

नव वसंत शोभा से, स्वच्छ शरद सुषमा से
फूलो के सारल्य, युक्त तृण तृण के बल से,
हम सुंदर स्वप्नो का जीवन नीड बनाएँ,
आओ, हम नव मानव का घर द्वार बसाएँ !

भ्रातृ भावना, विश्व प्रेम से भी गंभीरतम
प्रीति पाश मे बाँधे हम नव मानवता को,
जिसका दृढ आधार एकता हो आत्मा की,
जिसकी शाश्वत नीव चेतना की उज्वलता,
मनुज प्रेम के लिए मात्र हो मनुज प्रेम वह,
जग को नव संस्कृति का स्वर्णिम द्वार दिखाएँ,
आओ, हम नव मानव का घर द्वार बसाए !

युवती

आज दौडता भूमि कंप जन मन धरणी मे,
कैसे हम नव आशा, नव विश्वास बँधाएँ ?

गरज रहा भीषण अण दानव विश्व गगन में
मृत्यु अंक मे कैसे हम अमरत्व जगाएँ ?
क्षुधा दैन्य का भार ढो रहे जब असंख्य जन
कैसे भू को जीवन शोभा मे लिपटाएँ ?
आदर्शो से विरत आज स्वार्थो मे रत जग,
कैसे स्वर्णिम मनुष्यत्व की ज्योति दिखाएँ ?
कैसे हम नव मानव का घर द्वार बसाएँ ?

युवक

यह सच है, नव मनुष्यत्व के निर्जन पथ मे
बाधा विघ्नों के दुराग्रही श्रृंग अड़े है
स्थापित स्वार्थो से जकड़े,—जो पूर्व पक्ष है,
उत्तर पक्ष क्षितिज से इगित करता ज्योतित
मानव भावी के स्वर्णोदय मे दिक् प्रहसित !

आओ, हम अत प्रतीति को धर्म बनाएँ,
आओ, हम निष्काम कर्म को वर्म बनाएँ,
हम आत्मा की अमर प्रीति के धरा स्वर्ग मे
सब मिलकर जीवन स्वप्नो का नीड सजाएँ,
आओ, हम नव मानव का घर द्वार बसाएँ !

युवती

आज बहुत ही बडा चाँद आया है नभ मे,
अंतर का खुल गया रुपहला हो वातायन,—

मौन क्षितिज से, शुभ्र हास्य बरसाते भू पर
रजत शिखर, मानव आत्मा की गरिमा-से उठ !
आज प्रार्थना के हित आकुल स्वप्नो का मन !

(समवेत प्रार्थना गीत)

घरा शिखर हे,
अतर के ज्योति ज्वार
अजर अमर हृ !

ध्यान मौन, ऊर्ध्वप्राग,
तदाकार पूर्ण ज्ञान,
श्रद्धारोहण समान
शुभ्र सुधर हृ !

शात क्लेश हों अशेष,
शांत निखिल राग द्वेष,
भाषा हो भाव वेश
सुदरतर हे !

विकसित हो जन अतर,
कसुमित जन भू के घर,
भोगे नव जीवन वर
नारी नर हे !

ऊर्ध्व गगन उठा निखर,
चंद्र किरण रहीं उतर,
स्वप्न पंख रहे विचर
स्मित नभचर ह!

२५ जून १९५१)

फूलों का देश

फूलों का देश सास्कृतिक चेतना का धरातल है। प्रस्तुत काव्य रूपक में इस युग के अध्यात्मवाद भौतिकवाद तथा आदर्शवाद वस्तुवाद सबधी सघर्ष को अभिव्यक्ति देकर उनमे व्यापक समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है एवं विश्व जीवन मे बहिरतर संतुलन तथा परिपूर्णता लाने के लिए दोनों की ही उपयोगिता दिखाई गई है।

स्त्री पुरुष स्वर

कलाकार

वैज्ञानिक

विद्रोही जन

(नव वसत सूचक वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

यह फूलो का देश, ज्योति मानस का रूपक :
जहाँ विचरते अतर्द्रष्टा कलाकार, कवि
निभृत कल्पना पथ से नित, भावोन्मेषित हो !
यहाँ प्रेरणाओ की स्मित अप्सरियाँ उडकर
बरसाती आभा पखडियाँ शत रगो की,
स्वप्नो से गुजरित · यहाँ स्वर्णिम भृगो की
रजत घटियाँ बज उठती हर्षातिरेक से—
देवो का सगीत अमर वाहित कर भूपर !
यहाँ काँपती-छायाएँ, शोभा वसनो सी,
गोपन मर्मर ध्वनि भरती मानस श्रवणो मे,—
भावी की अश्रुत चापो सी आकृति धरती !

स्त्री स्वर

यहाँ प्राण पुलिनो को भावो से स्पदित कर
जीवन की आकाक्षा वहती कल कल ध्वनि मे,

प्रीति श्वास सी समुच्छ्वसित रहती मलयानिल
नाम हीन सौरभ से आकुल कर अतर को !
यह मोहित अभिसार भूमि है गधर्वो की,
जहाँ दूर वास्तविक जगत के कोलाहल से
स्वर्णिम द्राभा मे रचती है सृजन कल्पना
सूक्ष्म विश्व मानव भावी का सतरँग कल्पित !
यहाँ गूँजता रहता है सगीत अहर्निशि,
भाव प्रवण मानस द्रव्यो से प्रवहमान हो!

(वाद्य सगीत : समवेत गान)

यह फूलो का देश !
यहाँ निरतर जीवन शोभा
सजती नव नव वेश !

यहाँ लोटते इंद्रचाप शत
हँसते अपलक स्वप्न मनोरथ
यहाँ झूलता रश्मि दोल मे
मानस का उन्मेष !

झरते स्वर्णिम निर्झर कलकल
भरते प्राणो मे स्वर कोयल,
सुंदरता को देती स्वर्गिक-
प्रीति हर्ष सदेश !

यहाँ गूँजते अहरह • दिशिपल
बरसा करता जीवन मंगल,

फूलों का देश

सृजन चेतना की यह स्वप्निल
लीला भूमि अशेष !

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

यहाँ विजन छाया वन मे रहता एकाकी
एक स्वप्न द्रष्टा कवि, तरुण अरुण सा सुदर,
लता प्रता से मडित कुसुमित पर्ण कुटी मे !

जीवन का सघर्ष, करुण क्रदन, चीत्कारे
उसके भाव जगत को छूकर मर्म गीत मे
परिणत हो जाती, युग जीवन के स्वप्नो की
शोभा से वेष्टित हो, नव सतुलन ग्रहण कर !
खोजा करता वह विनाश के महाध्वस मे
नवल सृजन की स्वर सगति, उडते मेघो के
त्रस्त जाल मे घिरती तिरती शशि रेखा सी !
भावोद्वेलित वक्ष, खडा तृण कक्ष द्वार पर,
सोच रहा वह स्वगत, गध गुजित मधुकर सा—

(स्वप्न वाहक वाद्य सगीत)

कवि

यह छाया का देश, कल्पना का क्रीडा स्थल,
वस्तु जगत अपना घनत्व खोकर इस जग मे
सूक्ष्म रूप धारण कर लेता, भाव द्रवित हो !

जीवन के सघर्षो की प्रतिध्वनियाँ उठकर
यहाँ बदलती रहती उर सगीत मे विकल !
इस मानस भू पर नि.स्वर चलते नित सुरगण
स्वप्नो के घर चरण चिह्न आशाऽकाक्षा स्मित !

यहाँ बिछाती शत शत रगो की ज्वालाए
अपलक इद्रजाल शोभा का, जन मन मोहन :
सुन पड़ती अप्सरियो की पदचाप रुपहली
कँपती-छायाओं के पुलकित दूर्वाचल मे—
आँखमिचौनी खेला करती जो जीवन से !

बडी बडी चट्टान यहाँ धरती की आदिम
चुप्पी सी दम साधे नीरव चिन्तन करती :
अर्धरात्रि मे झिल्ली तरु कोटर मे झन झन
स्वर भर, सूनापन विदीर्ण करती वन भू का,
घोर गुह्य आकाक्षा सी जग निश्चेतन की !
यहाँ भयानकता सुदरता प्रीति पाश मे
बँधकर करती क्षण उपहास नियति का, निर्मम !

(गभीर प्रसन्न वाद्य सगीत)

कवि

शात, सौम्य, सोई वन श्री अब जाग रही है
नव प्रभात के स्पर्शो से स्वर्णिम चेतन हो,
बरस रहा नीडो से कलरव सृष्टि गान सा,
सिहर रहे पत्ते थर् थर्, सुख से विभोर हो !

गधपवन मे धरती भीनी साँस ले रही,
जाग रही वन छायाए अँगडाई भरती!
तरुण मधुप, षट्पद से हटा पँखुरियो के पट
अर्धस्मित कलियो के मृदु मुख चुबन करते ?

यह प्रभात भी ससृति का आश्चर्य! है महत्,
मौन प्रार्थना सा, पवित्र आशीर्वाद सा!
विस्मित कर देता जो भू मानस पलकों को
दिव्य स्वप्न सा, अमर स्वर्ग सदेश सा उतर!
धरती का जीवन सहसा निज ज्योति केन्द्र से
पुन युक्त होकर, हो उठता पूर्ण काम है!

यह फूलो का देश आज फिर धन्य हो उठा,
वाहित करता जो धरती की ओर निरतर
देवो का ऐश्वर्य अतुल,—शोभा सुदरता,
ज्योति प्रीति आनद अलौकिक स्वर्ग लोक का!

जाग रही है सुप्त प्रेरणाएँ मानस मे,
यह अतर्नभ का प्रभात है जन मगल कर!
तरु पत्रो के अतराल से छन नव किरणे
लोट रही भू रज पर ज्योति प्ररोहो सी हँस!

(हर्ष वाद्य सगीत)

युग प्रभात यह · एक वृत्त हो रहा समापन
धरा चेतना मे सस्कृति का आज पुरातन!
नव युग की प्राणो की आशा अभिलाषाएँ

मर्म मधुर सगीत लहरियो मे मुखरित हो
गूज रही है, छाया वन के नव मुकुलो को
घेर चतुर्दिक्! सद्य. स्फुट कुसुमो के मुख पर
विहँस रहे है स्वर्णिम ओसो के मुक्ता कण,
स्वप्नों की पद चापो से कँप उठता भूतल!
देख रहा मै मनश्चक्षु से, ताल मे ध्वनित,
अगणित निर्भय चरण क्षितिज की ओर बढ रहे!

(वाद्य सगीत . दूर से आता हुआ नर नारियो का समवेत गान)

युग प्रभात,
रक्त स्नात, युग प्रभात!

अधकार गया हार
मानस का हटा भार,
मुक्त पथ, मुक्त द्वार
गई रात!

सागर मे बाँध सेतु
अबर मे उड़ा केतु
मानव की विजय हेतु
बढो तात, बढ़ो भ्रात!

पर्वत के गिरे शिखर
मरुथल हों नव उर्वर,
विघ्नो पर, रहो निडर,
करो घात, करो घात!
करो घात!

(नर नारियो का प्रवेश)

स्त्री स्वर

कौन, कौन तुम, अरुण, वसत, मदन-से सुदर
पत्रो के प्रच्छाय नीड मे यहाँ छिपे हो
पक्षी से एकाकी ? नगरो से, वासो से
दूर, सभ्यता के केदो से विरत, विमुख हो
युग जीवन सघर्षण से, जन आकर्षण से ?

कवि

अरुण वसंत मदन सा ! पक्षी सा एकाकी ?
कलाकार हूँ मै, पर जीवन सघर्षण से
विरत नही हूँ ! .. देखो, मेरी स्वप्न निमीलित
आँखो मे भावी का स्वर्णिम बिम्ब पड़ा है !

पुरुष स्वर

(साश्चर्य) भावी का प्रतिबिम्ब ?

कवि

स्वर्ग की वेणी से मैं
इद्रधनुष को छीन, धरा के तिमिर पाश मे
उसे गूथ जाऊँगा,—देवो की विभूति से
मनुष्यत्व का पद्म खिला जीवन कर्दम मे !
ताराओ के छायातप से रँग रँग कर मै
जन भू का उपचेतन, रज की पंखड़ियो को

अत सुरभित कर जाऊँगा, नदन वन के
फूलो की शाश्वत स्मिति भर मृण्मय अधरो मे...
मै नव मानवता की प्रतिमा यहाँ गढ़ रहा
अतर्मन के सूक्ष्म द्रव्य से !

जनगण

ह ह ह· ह !!

कवि

मै विराट् जीवन का प्रतिनिधि हूँ ! मै वन के
मर्मर से, युग के जनरव से चिर परिचित हूँ !
भौरो का मधु गुजन, कोयल का कल कूजन
मेरे ही स्वर है ! स्वर्णातप मेरी स्मिति है !
मेरे उर के स्वप्न तितलियो की फुहार-से
रँग रँग की शोभा बखेरते जन मानस मे !
ऊषा, ज्योत्स्ना, ओस और तारे मेरा ही
चिर सदेश वहन करते ! पर्वत निर्झर-से
मेरे गायन फूट, दग्ध युग मन के मरु मे
प्राणो का कलरव, जीवन हरियाली भरते !
धरा स्वर्ग को स्वप्न सेतु मे बाँध सुनहले
मै सोपान बना जाऊँगा सुन नर मोहन !

प्रथम स्वर

खूब अहता का ऐश्वर्य मिला है तुमको !

द्वितीय स्वर

आत्म वंचना का उन्माद पिए हो मादक!

प्रथम स्वर

कलाकार हो, तभी हवा मे महल बनाते!
रिक्त स्वर्ग मे रहते आत्म पलायन के हो!

कवि

तुम जो अस्त्रो शस्त्रो से सज्जित सेना ले,
विजय ध्वजा ऊँची कर, चलते सख्याओ मे,
तुम भी मेरा कार्य कर रहे! ...धरा धूलि मे
जो जीवन तृष्णा, भुजग सी शत फन फैला
लोट रही है नीचे, मै ऊपर से उसकी
शोभा रेखाएँ अकित करता तटस्थ हो,
व्यापक युग पट मे सँवार कर : उसकी घातक
विष की फुकारो को पीकर, मर्माहत हो,
हृदय दाह मे जलता प्रतिपल, मै उसपर हूँ
बरसाता चेतना अमृत निज, तिक्त घृणा को
मधुर प्रीति मे, कटु तमिस्त्र को उर प्रकाश मे
आत्म विद्रवित कर! केवल स्वर शब्दो की ही
रिक्त साधना मात्र नही होती युग कवि की,
उसे साम्य सगति, सार्थकता भरनी होती
जीवन विश्रृखलता मे, सौदर्य खोज कर,
मानस कमल खिला कर्दम मे!

प्रथम स्वर

बहुत हुआ बस!
रहने दो यह वाक् चपलता! वह शोभा की
सीमा लाँघ चुकी है। मृगतृष्णा के पूजक,
तुम अपने को जीवन का प्रतिनिधि बतलाते?
और विधाता बन बैठे हो मनुज नियति के।

द्वितीय स्वर

हम है भावी के निर्माता, मानवता के
जीवन शिल्पी, भू के जनगण, जो युग युग की
लौह श्रृखला तोड, बज्र सगठित हुए है।
बधन मुक्त, नई जन मानवता के रक्षक।

हम वन पर्वत, सागर मरुथल मे मानव की
विजय ध्वजा फहराएँगे। इस वन प्रातर में
जहाँ बनैले पशुओ की है गुहा, वहाँ हम
सेना शिविर बनाएगे निज, जहाँ खगो के
नीड मात्र है, वहाँ जनो के वास बनेगे।
हमको सामूहिक जीवन की आवश्यकता
समतल मनुज बनाने को है बाध्य कर रही।
तभी तुम्हारे से आदिम जन, युग जीवन के
नव स्पर्शो से विकसित, सस्कृत हो पाएँगे!

कवि

नि सशय, आदिम हूँ मै!

कुछ स्वर

(दर्प से) हम चिर नवीन है!

स्त्री स्वर

नही, नही,—परिहास कर रहे हो तुम हमसे!
तुम कवि हो, तुम कलाकार हो! तुम युग युग के
अभिशापित, शोषित जनगण के साथ रहोगे!
युग सकट मे उद्‌बोधन के गान छेडकर
तुम जनता को साहस दोगे, सबल दोगे!

कवि

अगर साथ रहने देगे जनगण के नायक!!

स्त्री स्वर

देखो, तुम देखो इन हड्डी के ढाँचों को—

एक स्वर

बज्र बन चुके है दधीचियों के ये पंजर!

स्त्री स्वर

देखो, नग्न क्षुधित मनुष्यता की छलना को,
रक्त क्षीण, निष्ठुर विषण्णता को जीवन की!!
वर्तमान का भीषण उत्पीडन है इनको
निर्ममता से कुचल रहा! यदि एक बार तुम
आँख खोल कर इन्हे देख लोगे जो सचमुच,

करुणा से विगलित उर हो, मर्माहत हो तुम
सहम उठोगे, हे फूलो के जग के वासी!

एक स्वर

और क्रोध से पागल हो जाओगे शायद
आदर्शों के मूर्ति पूजको के इन कुत्सित
दुष्कर्मों को देख, घृणा से आँख फेर कर!
मृत प्रतिमाओं के पूजक जीवित जनता के
पूजक कभी नही हो सकते,—जीवन्मृत जो!

कवि

देख रहा हूँ मै लज्जा से गडा जा रहा!
कब से मेरे मन की आँखो के सन्मुख उठ
नाच रही है छायाए सक्राति काल की!
भूखों के ककाल खडे चीत्कार कर रहे,
अवचेतन के प्रेत भर रहे अट्टहास है!
क्रूर, ह्रास युग के लोभी असुरो से पीडित
मानवता कातर क्रन रोदन छोड, एक हो,
आज क्रुद्ध ललकार रही, हुकार भर रही!

(तुमुल वाद्य सगीत . समवेत गान)

भूत के ककाल है हम,
क्रुद्ध रुद्र कराल है हम!
कठ से लिपटे त्रिशूली के
भयकर व्याल है हम!

मनुजता के प्रेत है हम
आज सब समवेत है हम,
बीज है हम, खेत है हम,
शक्ति अमिट विशाल है हम!

खड्ग है हम, ढाल है हम,
ज्वार से उत्ताल है हम,
रुद्र की दृग ज्वाल है हम
धरणि की जय माल है हम!

कुछ स्वर

मिथ्या है, सब मिथ्या जग मे आज चतुर्दिक्,
केवल सत्य मनुज के उर की घोर घृणा है!
मिथ्या नैतिकता, मिथ्या आदर्श है सकल,
जन पीडन शोषण के हित जो उद्धृत होते!
केवल सत्य विषमताएँ है, प्रतिहिसा है,
केवल सत्य अतृप्त पिपासा है, तृष्णा है!!

उबल रहा है द्वेष गरल से जन गण का मन,
भभक रहा है क्रोध अग्नि से मानव अतर,
फटने को है आज विकट ज्वाला का पर्वत,
थूकेगा वह, उगलेगा दाहक लपटों को,
और जला देगा छल झूठ कपट के जग को,
मानव उर की निर्ममता को, नृशसता को,—
भस्मसात् कर देगा जग के दुस्वप्नो को!

(विवर्तन सगीत)

कुछ स्वर

छायाएँ है, छायाएँ आदर्श भयानक,
छायाओं को कुचलेगे हम, आभासों को
रोदेगे पाँवो के नीचे, युग युग के मृत
सस्कारो को खोद, मिटा देगे जन मन से !

(उत्तेजना द्योतक सगीत)

कवि

इसीलिए तुमने सम्मानित जीवन श्रम को
छोड, अहेरी जीवन फिर स्वीकार किया है ! —
देख रहा हूँ, आज सगठित मन युग युग का
सामूहिक जन बर्बरता मे बिखर रहा है,
आदर्शों के स्वर्ग विचुबी शिखर टूट कर
भू लुठित हो रहे विवर्तन की आँधी मे,
और नाश के घने अँधेरे के उतने ही
गहरे गर्तों मे गिर, धरती के अतर को
क्षत विक्षत कर रहे, चूर्ण हो !

जीवन की वे
पावन, मोहित, निभृत घाटियाँ, जो चिर करुणा,
ममता के स्वर्णिम प्रकाश से भरी हुई थी,
जहाँ सभ्यता का क्रदन न पहुँच पाया था,

पद मर्दित हो रही आज वे अविश्वास के
प्रतिहिसा के दैत्यो के निर्मम चरणो से!!
मानव की निर्दयता उनके भीतर घुस कर
बोल रही तोपो के मुख से विकट नाद कर!!
भले बुरे, काले सफेद औ' सत्य झूठ के
सभी मान इस सतत बढ रही अँधियाली के
प्रलय ज्वार मे डूब रहे है किमाकार हो!

(विप्लव सूचक वाद्य सगीत)

एकाकार हुए जाते है पाप पुण्य सब,—
मानव के अतरव्यापी घन अधकार से
घृणा द्वेष, अन्याय कपट, छल स्पर्धा हिसा
आज पुकार रहे चिल्लाकर—बाह्य सगठन
मात्र सत्य है! बाह्य सगठन चरम लक्ष्य है!
बाह्य आसुरी एका ही सब कुछ है जग मे,
अतर्जगत, हृदय का एका,—केवल भ्रम है!
अतर्मुख सगठन पलायन, बहलावा है!
सस्कृति? वर्गो के हित साधन की दासी है!
युग अपनी मुट्ठी मे अणु सहार लिए है!!

विज्ञापन करता विनाश भीषण शब्दो मे!
हिल हिल उठते आज चेतना भुवन मनुज की
भावी की आशका से! अह, आज मनुज का
आत्म प्रतारक द्वेष बन गया विश्व विनाशक!!

कुछ स्वर

कायर हो तुम कायर ! जो उपदेश दे रहे
नगे भूखे लोगो को अध्यात्मवाद का!
कलाकार तुम नही, तुम्हारे दुर्बल उर मे
बज्र घोष विद्रोह नही युग की प्रतिभा का!

खौल न उठता रक्त तुम्हारा घृणा क्रोध से
शोषित पीडित मानवता की नग्न व्यथा पर !
दया द्रवित भी नही दिखाई देते हो तुम !!
जग जीवन से विरत, निरत फूलो के वन मे,
स्वप्न लोक मे रहते हो तुम आत्मतोष के!

साथ नही दोगे तुम जन का युग सकट मे
रिक्त कला, सुदरता के थोथे आराधक !!
धिक् तुमको ! यह व्यक्ति अह जन पथ कटक है!

कवि

किंतु हाय, यह सध अह दुर्गम पर्वत है!!
भीतर भी है जनगण, भीतर ही जन का मन,
भीतर भी हैं सूक्ष्म परिस्थितियाँ जीवन की,
भीतर ही रे मानव, भीतर ही सच्चा जग,
जाति वर्ग श्रेणी में नहीं विभाजित है जो,
उसे नव्य संगठित, पूर्ण सक्रिय, चेतन कर
बहिर्जगत मे स्थापित करना है मानव को !

कुछ स्वर

चलो, बढ़ो हे भूजन, असिधारा के पथ पर,
सागर को मथने, पर्वत का शीश झुकाने,—
विजय ध्वजा स्थापित करने देवो के सिर पर!

रौदेगे हम परियो की चापो से गुजित
इस वन फूलो की घाटी को! बिखरा देगे
इसकी स्वप्न भरी पखडियाँ धरा धूल मे!
तोड मोड इसकी शोभा पल्लव शाखाएँ
लूटेगे रस के मटकों-से भरे फलो को,
जो खगोल से, चेतन भुवनो से लटके हैं!

ध्वस भ्रंश करदेगे हम इस आदर्शो की
माया मोहक पचवटी को, भटकाती जो
मानव मन को नित नव स्वर्ण मृगो के पीछे!
बहिर्जगत की लौहमुष्ठि फिर अतर जग का
नव निर्माण करेगी जीवित आघातों से !....
नही रहेगा बाँस, बजेगी तब क्या वंशी?
हम युग विद्रोही है, आज हमारी इच्छा
सत्य न्याय की उद्घोषक है! —शेष झूठ है!

(प्रयाण संगीत)

चलो तात, बढो भ्रात!
गौरव के गिरें शिखर
जन भू हो नव उर्वर,

जड़ता पर, रहो निडर,
करो घात, करो घात,
करो घात!

(तानपूरे के स्वर)

कवि

धरती का निस्तल अवचेतन उमड रहा है
बर्बर युग के आवेशो से आंदोलित हो,
जग जीवन की क्रूर विषमताओं मे फिर से
नव युग का मासल समत्व भरने जन वाछित,—
मानव उर की मोह दभ की बज्रशिला पर
शत निष्ठुर प्राकृत प्रहार कर प्रतिहिसा के!

विस्मित हूँ मै! आज उपेक्षित जन धरणी का
भू विस्तृत समतल जीवन जब विहँस चतुर्दिक्
प्रथम बार पल्लवित, लोक सगठित हो रहा
भौतिक स्तर पर, दैन्य दु ख से अखिल मुक्त हो:
छूट रहा जब करुण पराभव सख्याओं का
विगत युगों की निठुर नियति से भाल पर लिखित,—

प्रथम बार जब युग युग का भू कल्मष कर्दम
आज धुल रहा प्रणत रीढ जनगण के मुख से,
खड़े हो रहे जो अगणित पैरो पर फिर से
दैन्य गर्त से निकल, असख्य भुजाए फैला,
अँगड़ाई भरते प्रचड जीवन लपटो-से,
अग्नि शस्य-से लहरा भू पर प्राण प्ररोहित,—

ऐसे युग मे एक ऊर्ध्वदिक् दिव्य संचरण
जन्म ले रहा अतरतम मे युग मानव के,
निज अपूर्व चेतना शिखा से आलोकित कर
जीवन मन की अतल गहनताओं का वैभव,
सूक्ष्म प्रसारों की अतुलित दिग्व्यापी शोभा,—
मानव मन को ज्योति चमत्कृत कर, जीवन का
स्वर्गिक रूपातर कर, स्वर्णिम ऊँचाई से!
देख रहा मै, स्वर्ग क्षितिज से उतर रही है
नव जीवन शोभा की प्रतिमा आभा देही,
नव सस्कृति की अत स्मित किरणो से मडित,—
जो बहिरतर ऐक्य साम्य मानव जीवन मे
पुन प्रतिष्ठित कर देगी, ऊर्ध्वग, भू व्यापक!
...किंतु कौन तुम, मौन ज्योति विद्रवित जलद-से
चिन्तन की मुद्रा मे, यहाँ खड़े हो कैसे?
छोड साथियों को अपने,—किस अभिप्राय से?

वैज्ञानिक

किस आशा से? वैज्ञानिक हूँ मै! इतना ही
मेरा परिचय! मैने ही चंचल विद्युत् को
वाष्प रश्मि को बाँध, बनाया युग मानव की
क्रीता दासी! मैने अणु का गर्व चूर्ण कर
भूत प्रकृति की मूल शक्ति को किया निछावर
मानव के चरणो मे! आज मनुज स्वामी है
सिन्धु गगन का, देश काल का—निखिल प्रकृति का!
और अनेकों चमत्कार मैने इस युग में

दिखलाए है यत्रो के बल से मनुष्य को,
जो पिछले युग के मत्रो तत्रो के छल से
कही सत्य, विस्मयकारी है,—उन्हे गिनाना
आत्म प्रशसा कहलाएगा, पातक है जो!

कवि

परिचित हूँ मै सुहृद्, तुम्हारे अमर दान से,
व्याप्त तुम्हारी शुभ्र कीर्ति है दशों दिशा मे,
रूपांतर कर दिया मनुज जीवन का तुमने
भूत परिस्थितियों मे उसकी महत् क्राति कर!

किन्तु पूछता हूँ मै तुमसे, आज मनुज क्या
स्वामी है या दास प्रकृति का? वह विद्युत् पर
शासन करता है, या विद्युत् वाष्प यत्र ही
अधिकृत उसे किए है?—हाय, मनुज का अतर
चूर्ण हो रहा आज दर्प से, बहिर्जगत की
अंध वीथियो मे शत खोकर, लक्ष्य भ्रष्ट हो!
हृदय हीन कर दिया उसे जड भौतिकता ने!!
आज प्रकृति की मूल शक्ति देकर, मानव को
महानाश के पथ पर तुमने छोड़ दिया है!!

वैज्ञानिक

स्यात् बदल जाती जग की कटु अर्थ व्यवस्था,
बाह्य विषमताएँ पट जाती युग जीवन की:
स्वार्थ लोभ के पैने पजो से मानव पशु
मानव का मुख नही नोचता रक्त सिक्त कर!—

लौह अस्थि पजर मे भीषण यात्रिक युग के
मनुज हृदय की धडकन पुन सुनाई पडती!
क्रूर वाष्प विद्युत् के दानव मानवीय बन
शोषक से सेवक बन जाते जन समाज के!

कवि

यदि अतः संगठित आज हो जाता युग मन,
मनुज हृदय का परिवर्तन सार्थक हो सकता,
तो आदिम सस्कार उभडते नही धरा के,
युग जीवन का स्वर्णिम रूपातर हो उठता!
हिम फुहार सी बरस सुनहली शांति चतुर्दिक्
शुभ्र हास्य से अभिषेकित करती भू प्रागण,
जीवन मन के मूल्य निखिल अत. परिणत हो
व्यापक, उर स्पर्शी बन जाते स्वर्ग क्षितिज छू!
अतर् जीवन की ऊर्ध्वग महिमा से मडित
नव चेतन हो उठती जड़ धरणी सुर प्रहसित!

वैज्ञानिक

अगर मुक्त हो सकती रचना शक्ति जनो की
समुचित वितरण हो पाता जीवनोपाय का,
सामाजिक सतुलन ग्रहण कर लेता भू श्रम
बँट जाता यत्रो का बल आर्थिक समत्व मे,—
स्वार्थ लोभ, अन्याय द्वेष स्पर्धा उठ जाते
भूव्यापी जन रक्तपात टल जाता युग का,
मानव के सयुक्त कर्म से स्वर्णिम चेतन
युग प्रभात हँस उठता भू तम को निरस्त कर!

कवि

और साथ ही अगर ऊर्ध्व चेता बन जाता
समदिक् मानव, अतिक्रम कर मन की सीमाएं,
मिट जाते खंडित भू जीवन के विरोध सब,
भौतिक नैतिक मान नियोजित होते युगपत्!
मानवीय संतुलन ग्रहण कर लेता जन युग,
यंत्रों की जलती साँसे ठढी पड जातीं!
मनुज चेतना के पारसमणि स्निग्ध स्पर्श से
लोहे की निर्ममता स्वर्ण द्रवित हो उठती!

नई चेतना के प्रकाश मे केन्द्रित मानव
पुन सत्य का मुख विलोकता नए रूप से,
नई दृष्टि मिल जाती उसको जीवन के प्रति,
मिट जाती सब विगत युगो की घृणित क्षुद्रता!
बाह्य रुद्ध बौनेपन से निज ऊपर उठकर
ऊर्ध्व-मुक्त, अतश्चेतन बन जाता जन मन,
अत: स्थित, अत. स्मित हो, अत: कृतार्थ हो!

वैज्ञानिक

यही सोचता हूँ मैं भी अब! आज मुझे है
महत् प्रेरणा मिली ... मनुज अतर्जीवी है!
स्पष्ट देखता हूँ मै, अतर का विधान ही
मानव है! अत: सयोजित, ऊर्ध्व समन्वित!
आज मनुज मर गया! ... पराजित हो भीतर से
दौड़ रहा है वह बाहर, व्यक्तित्व हीन हो!
व्यक्तिहीन सामाजिकता निर्जीव ढेर है!

जीवन इच्छा तुच्छ, रूप चल मृग तृष्णा सा,
आशा का इंगित निष्प्रभ, भूतल मरघट सा ! !

(आशाप्रद वाद्य संगीत)

अमृत पुत्र है पर मानव,—है व्यर्थ निराशा !
मांस पेशियाँ आज पर्वताकार खड़ी हों
भले रोकती हों अंत. केन्द्रित प्रकाश को,
फूट पड़ेगा वह स्वर्णिम निर्झर बन उर से !

पतझर आया है यह फूलों के प्रदेश में,—
झरने दो मानस के मुरझाए वैभव को,
अरुण किसलयों से, कलियों के अवगुंठन से
झाँक रहा फिर नवल रुपहला आशा का जग !

फिर से बहिरंतर संयोजित होगा मानव,
पुनः ज्ञान विज्ञान समन्वित होगा जीवन !
व्यक्ति समाज परस्पर अन्योन्याश्रित होकर
बढ़ते जाएंगे विकास के स्वर्णिम पथ पर !
बहिर्जगत के शिखर ज्वार पर आरोहण कर
नव्य चेतना उतरेगी किरणों से मंडित,
सत्य अहिंसा होंगे भावी के पथ दर्शक,
विचरेगी मानवता फूलों के प्रदेश में
नव संस्कृति की श्री शोभा सौरभ से पोषित !

(हर्ष सूचक वाद्य संगीत)

वैज्ञानिक

स्वप्न नही है यह, निसशय मूर्त सत्य है !
मनुज सदा अपने को अतिक्रम कर, अतर्मुख
आदर्शो के नित नूतन ऊर्ध्वंग प्रकाश को
नवल वास्तविकता मे बाँधेगा जीवन की,
मानवीय होगी निश्चय वास्तविकता वही !

कवि

तुमसे यह सुनकर कृतकार्य हुआ अब जीवन !
आओ, हम दोनों बहिरतर के प्रतिनिधि मिल
अमृत चेतना को इस फूलो के प्रदेश की
नव युग जीवन मे परिणत कर, सत्य बनाएँ !

(जनरव : रणवाद्य)

देखो, लौट रहे है जनगण श्रात क्लांत मन,
शोणित पकिल तन,—धरणी को रक्त पूत कर !
आज प्रार्थना जनश्रम मिलकर ज्योति शक्ति से
शाति धाम, जन मंगल ग्राम बनाए भू को !

(समवेत गीत)

मगलमय पूर्ण काम,
जन मन का लो प्रणाम !

द्वेष रहित हो भू मन
शोभा स्मित जन जीवन,

सृजन स्वप्न भरे नयन,
कर्म जनित हो विराम !

विश्व शांति बने ध्येय,
श्रेय ग्रथित रहे प्रेय,
लोक ऐक्य हो अजेय,
पावन जनवास, ग्राम !

शात नील विश्व गगन,
शांत हरित सिन्धु गहन
शांत नगर पर्वत वन,
जन भू हो शाति धाम !

५ मार्च १९५१)

उत्तर शती

विश शती का विश्व सभ्यता के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहेगा। प्रस्तुत रूपक में उसके पूर्वार्ध के संघर्ष संग्राम का संक्षिप्त निदर्शन तथा उत्तरार्ध के आशा कल्याणप्रद क्रम विकास की ओर सकेत किया गया है। उत्तरशती मानव जगत मे नवीन स्वर्णयुग का समारभ कर सकेगी, इसमे संदेह नही।

पुरुष स्वर
स्त्री स्वर
सन् १९५१
जनगण

(समवेत गान)

कौन कौन तुम निष्ठुर हासिनि?
महाकाल के मुक्त वक्ष पर
नग्न नृत्य करती उन्मादिनि!

दक्षिण कर पीयूष पात्र स्मित
वाम हस्त विष ज्वाल विकपित,
विचर रहो निर्मम अबाध तुम
विश्व विषादिनि, लोक प्रसादिनि!

टूट रहे युग युग के बधन
गिरते मुकुट महल सिहासन,
रणन झनन बज बज उठता रण,
जय जन मन जीवन उल्लासिनि!

सिधु क्षितिज अब रक्त तरगित
अरुणोदय होने को निश्चित,
जय, विनाश के अतल गर्भ से
नव युग जीवन ज्वार विकासिनि!

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

विश शती यह, अपने बज्र मुखर चरणो से
रण झकृत कर युग के जीवन का कटक पथ,
दिग् घोषित करती है अपना महिम आगमन
शत शत तोपों के गर्जन से अभिनंदित हो !

(तुमुल वाद्य ध्वनि)

घोर युद्ध के साथ धरा जन के जीवन मे
कर प्रवेश, भर दारुण क्रदन, भीषण गर्जन,
प्रलय बलाहक सी छायी यह जग के नभ मे
तडित् कटाक्षो से विदीर्ण कर विश्व दिगंतर !

महासमर छिड चुके धरा पर है तब से दो,
रक्त तरगित कर जन के जीवन का सागर,
रुधिर पक से रँग धरती का आहत तन मन,
दैन्य दु.ख ईर्ष्या स्पर्धा के रक्त बीज बो !
मँडराते रण वायु यान मंथित कर अबर
भीम काय दानव-से फैला मृत्यु पंख-निज,
हरित भरित धरणी के जन उर्वर अंचल मे
बरसा कर पावक प्रचंड खर नरक कुड का !
किमाकार चल पर्वत शिखरों से टकराकर
तुमुल नाद से चीर गगन की नील शाति को
घिरते विद्युत् घन विनाश के, युग के नभ मे,
महा मरण की छाया डाल धरा के मुख पर !

(करुण भीत वाद्य ध्वनि)

स्त्री स्वर

बढता जाता सघर्षण पर कटु संघर्षण,
उद्वेलित वारिधि सा विश शती का मानस
आलोडित हो युग आवेशो के शिखरो मे
डुबा रहा भू के तट, नव जीवन प्लावन भर !

निखर रही है नई धरित्री युग कर्दम से
निखर रहे है नए देश प्राणो से मुखरित,
लोक साम्य की महत् प्रेरणा से आदोलित
उमड़ रही जन मानवता जीवन कल्लोलित !

(हर्ष सूचक वाद्य ध्वनि)

जूझ रहे है लौह सगठन युग जडता को
बज्र मुष्ठियो के प्रहार से जागृत करने,
नव शोणित से वैर-स्नात करने भू का मुख
परिवर्तित करने जग के कटु मान चित्र को !

टकराती है नव्य चेतना की हिल्लोले
युग मन की निश्चेष्ट बधिर पाषाण शिला पर,
हाहाकारो से, जयघोषों से समुच्छ्वसित
विश्व क्रांति की ओर सतत आरोहण करती !

(द्रुत तीव्र वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

रक्त क्राति के शोणित के सागर से उठ कर
चमक रहा है लोहिताक्ष नक्षत्र नवोदित
युग के नभ मे अगारक सा महत् महोज्वल,
भूमि पुत्रवत्, मातृधरा के वैभव से स्मित,—
युग युग के शोषित जनगण का स्वर्ग भूतिप्रद !
नव्य लोक वह, जिसके श्रेणि मुक्त समतल मे
विचरण करती वर्ग हीन मानवता निर्भय,
नव शोणित से स्पदित, नव शिक्षा से जागृत,
विगत विभेदो, घृणित निषेधो से विमुक्त मन,—
खीच धरा के प्राणो से नव युग का यौवन
निर्मित करती वह नव भू जीवन, जन सस्कृति,
अभिनव आशाऽकांक्षाओं, ध्येयो से प्रेरित !

तरुण रक्त मे उसके अभी नही आ पाया
वयस सुलभ, अनुभूति गहन सतुलन ज्ञान का,
गत युग के सस्कार नही मिट सके मनस् के,
आवेगों की नई धरा वह, ऊष्ण, बहिर्मुख,—
जिसे चाहिए जीवन मथन, अतर्दर्शन !

फैल रही है उसकी आभा, जग जीवन के
जाति ग्रथित तम को सतरगो मे रजित कर,
विजयी अरुणध्वजा मे फहराता प्रभात नव,
स्मित प्रकाश की किरणे बिखरा जन प्रांगण मे !
वहाँ सभ्यता मध्य युगों की, मध्य वर्ग की

रूढ़ि रीतियो के पाशों से मोह मुक्त हो
जीवन पट बुन रही विशद जन मानवता का
नव शोभा सुदरता, नव गौरव गरिमा के
स्वर्ण रजत ताने बाने से,—नव मूल्याकित !
अभिवादन इस भव्य देश का, वृद्ध जगत के
साथ बढ़े वह, विश्व शाति का पोषक बन कर !

स्त्री स्वर

वयस शुभ्र हिम शिखरो के उस पार, पड़ोसी
ज्ञान वृद्ध प्राचीन चीन की महाभूमि भी
युग परिवर्तन की करवट ले, नव्य राष्ट्र मे
उधर लोक सगठित हो रही, तरुण रुधिर स्मित,
नव जीवन से गुजित, नव प्राणो से मुखरित,—
रक्त जिह्व ध्वज फहरा जन आशाऽकाक्षा का,
युग प्रभात सूचक ! जाग्रत् एशिया अब महत् !

गाते गरज गरज जनगण इस भूमि खड के
वश प्ररोहो-से उठ भू का वक्ष चीरते,—
अग्नि शालि से लहरा जीवन की लपटो मे,—
जय हो जनता की जय, जन मानवता की जय !

(जन गीत)

युग प्रभात जन लाए, जन लाए !
सिन्धु तरंगो गिरि शृंगों पर
विजय ध्वजा फहराएऽ !

बढते अगणित पग जब मग पर
उठते अगणित भुज जब ऊपर,
दते पथ मरु पर्वत सागर,
सादर शीश नवाए!

मिटा युगों का दैन्य त्रास तम
कटा निखिल मन का मोहक भ्रम.
जग जीवन गौरव जन का श्रम
नव प्रकाश दिखलाए!

आज धरा श्रम सकल एक हो
मात्र दासता के बंधन खो,
अग्नि बीज नव जीवन के बो
स्वर्ण शस्य बन छाए, लहराए!

(तानपूरे के स्वर)

स्त्री स्वर

भौगोलिक ही नही, सास्कृतिक धर्म बंधु भी
भारत का जो रहा पुरातन, अक्षय करुणा
ममता के स्वर्णिम सूत्रो मे बँधा चिरतन .
भारत के अंत प्रकाश से ज्योतिर्मज्जित
जिसके शिखर गहन पथ विपणि हुए चिर पावन,
महाबोधि की प्रीति द्रवित सस्कृत वाणी से
जिसके पुर गृह द्वार रहे नित अतर्मुखरित,
ऐसे निज आत्मीय सखा का पुनः हृदय से
अभिवादन करते भारत जन, उससे नूतन

युग मैत्री, सद्भाव, सधि स्थापित करने को
समुल्लसित मन,–सुहृद् अभ्युदय के गौरव से
उन्नत मस्तक !—

बधन मुक्त, स्वतंत्र,—आज वे
लोक क्राति के लिए स्वत. भी जाग्रत्, उद्यत !
गौतम से गाधी तक सत्य अहिसा का जो
रहे अमर सदेश सुनाते क्षुधित जगत को,
मानव जीवन मन मे अत क्राति के लिए
मौन प्रयासी, विश्व शाति के चिर अभिलाषी
भारत के सुत, नव्य चेतना से अत स्मित,
नव मानवता के स्वप्नो से अपलक लोचन
जाग रहे, विस्मृत युग के स्वर्णिम खँडहर-से,
भू जीवन की नवल कल्पना से उन्मेषित
स्वर्गिक पावक की लपटो-से, लोक यज्ञ हित !

(जागरण वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

यह सच है, जिस अर्थ भित्ति पर विश्व सभ्यता
आज खडी है, बाधक है वह जन विकास की,
उसमे दीर्घ अपेक्षित है व्यापक परिवर्तन
भू मगल हित ! धनिक श्रमिक के बीच भयकर
जो शोणित पकिल खाई है वर्ग भेद की
उसे पाटना है इस युग को आत्म त्याग से
सहिष्णुता, शिक्षा समत्व से,—और नही तो,
सत्याग्रह से, शत शत निर्भय बलिदानो से !

जिससे भू का रक्त क्षीण शोषित विषण्ण मुख
फिर प्रसन्न, जीवन मासल हो, युग शोभन हो !

उत्तर शती अवश्य यत्र युग के विप्लव मे
सामंजस्य नया लाएगी जन मन वांछित,
जिससे शिक्षा, सस्कृति, सामूहिक विकास का
पथ प्रशस्त हो जाएगा युग मानव के हित !

(घंटों और वाद्यों की करुण ध्वनि)

स्त्री स्वर

अर्धशती अब बीत रही है, घनन् घनन् घन्,
घडियालों का क्रंदन उसको बिदा दे रहा !
अर्धरात्रि की नीरवता को चीर झनन झन
झिल्ली का कातर स्वन उससे बिदा ले रहा !
शत शत आहत इच्छाए, असफल तृष्णाएं
उसके चिर कुठित अतर मे मौन सो रही,
शत मुकुलित आशाएँ, अभिनव अभिलषाए
भावी के स्वप्निल पलको मे जन्म ले रही !

(मंद्र वाद्य ध्वनि)

स्त्री पुरुष स्वर

बिदा, बिदा, हे पूर्वशती, गत समरों की स्मृति
मिटे तुम्हारे सँग मन से, भीषण छायाकृति !
मुक्त रुपहले पंख खोल, बरसा स्वर्णिम स्मिति
विचरे भू पर शाति, शाति प्रिय हो जन संसृति !

(द्रुत वाद्य ध्वनि)

लोक क्रांति की अग्रदूतिके, तुम झझा पर
चढकर आई, मथित करने जीवन सागर!
भूमिकप सी, ध्वस भ्रंश, गर्जन तर्जन भर
धूलिसात् कर गई युगो के सौध स्मृति शिखर!
स्वस्ति, स्वस्ति! अब नव निर्माण करे भू के जन
ले जाओ अपने सँग जग का दारुण रोदन!

(गभीर वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

इन पचास वर्षो के निबिड कुहासे से कढ
सन् इक्यावन मौन बढ रहा धीरे सन्मुख!
अर्धपक्व केशों के उसके प्रौढ भाल पर
चिन्तन की रेखा है अंकित, नवल क्षितिज सी!
रजत घटियो की कल ध्वनि स्वर्णिम आशा के
पखो में उड अभिनदन करती है उसका!

(घटियो की हर्ष ध्वनि)

स्त्री पुरुष स्वर

स्वागत नूतन वर्ष, शिखर तुम विंश शती के,
लाओ नूतन हर्ष, नवागतुक जगती के!
कबसे अपलक नयन प्रतीक्षा करते भू जन,
विश्व शाति में लोक क्राति हो परिणत नूतन!
भर जाओ स्वर्णिम समत्व जग जीवन रण मे,
नव जीवन के सृजन स्वप्न जनगण के मन मे!

लहरो के शिखरो मे उठती जीवन आशा,
गिरि शृगो मे चढती जन भू की अभिलाषा !
खोज रही गत प्रतिध्वनियाँ नव मन की भाषा,
जन मानवता जीवन की नूतन परिभाषा !
आओ, जन सारथि बन, कर्दम स्तभित युग रथ,
पथ बाधाए लाँघ, करो हे पूर्ण मनोरथ !

(आशाप्रद वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

रवि के चारों ओर धरा के पूर्ण पचदश
संक्रमणों के बाद वर्ष नव उदित हो रहा
विश्व मच पर, पार कटकित कर आधा पथ,
अनुभव गहन हृदय मन ले सागर सा निस्तल !
नव आशा की किरणो से स्मित आनन श्री ले,
सोच रहा वह उच्च स्वरो मे जल प्रपात सा :—

(गभीर वाद्य ध्वनि)

सन् इक्यावन

भाग्यवान् हूँ मै ! विराट् इस विश शती के
चिर महान युग मे जो नूतन जन्म ग्रहण कर
पुन. आ सका हूँ अब सन् इक्यावन बन कर !
विश्व सभ्यता आज नवल इतिहास रच रही,
जन सस्कृति का आज धवल अध्याय खुल रहा !
कितने ही परिवर्तन आए भू जीवन मे,
कितने ही संघर्ष और सग्राम छिड चुके,

बर्बर युग से आज यंत्र युग मे मानवता
लडती भिड़ती अधकार में राह खोजती,
सागर सी गर्जन तर्जन उद्वेलन भरती
पहुँच रही अब ऐसे व्यापक सगम स्थल पर
जहाँ उसे निज पिछले जीवन का मथन कर
पिछले आदर्शों मूल्यो का विश्लेषण कर
लोक सभ्यता निर्मित करनी है भू विस्तृत
विविध त्रिगन सस्कृतियों का कर महत् समन्वय

(प्रगति सूचक वाद्य सगीत)

महाभाग हूँ मै ! महान् है विश शती यह !
धन्य धरा जीवी युग के, जिनके कंधो पर
भावी मानवता का स्वर्णिम भार धरा है !
वृहद् ज्ञान विज्ञान किया सचय इस युग ने,
वाष्प तड़ित्, बहु रश्मि शक्ति इसके इगित पर
नाच रही है,—आज महत् अणु सिद्धि प्राप्त कर
उसने मौलिक भूत शक्ति का स्रोत पा लिया .
विजयी हुआ मनुज का मन जड भूत प्रकृति पर,
आज अनुचरी बनी स्वामिनी मनुज नियति की !

(विजय सगीत)

भू रचना का स्वर्णिम युग हो रहा अवतरित
पुनः विश्व प्रागण मे कब से लोक अपेक्षित !
आज मनुज को खड युगो से ऊपर उठकर
रूढ़ि रीति गत आदर्शो के ककालो को

पद लुंठित कर, युग वैभव की सुदृढ भित्ति पर
मनुष्यत्व के व्यापक तत्वो से नव जीवन
नव सस्कृति निर्मित करनी है भू जन के हित !
युग युग से कलुषित भू का तन भाव-स्नात कर
वेष्टित करना है उसको नव श्री शोभा मे
जीवन के मन के गौरव मे आत्म द्रवित कर !
नव्य चेतना के आलिगन मे बँध जनगण
जिससे फिर संगठित हो सके बाहर भीतर ·
गूँज उठे संहार सृजन का गीत मुक्त स्वर –

(समवेत गान)

झरे, झरे
जीर्ण शीर्ण विश्व पर्ण
चिर विदीर्ण चिर विवर्ण
नव युग के प्रागण म
मरें मरे !

अर्धशती रही बीत
भावी मे लय अतीत,
दन्य ताप, रक्त पात
हरे, हरें !

हँसता जीवन वसंत
कुसुमित जग के दिगंत,
जन हित वैभव अनंत
भरे, भरे !

जीर्ण शीर्ण विश्व पर्ण
झरे, झरे !

(मेघ घोष और रण वाद्य)

सन् इक्यावन

किंतु हाय, क्या देख रहा मैं, विश्व क्षितिज में
उमड घुमड घिर रहे चतुर्दिक् मेघ भयानक !
अट्टहास करती शपा, रण भीषण गर्जन
भरते शोणित के घन, दिङ मंडल विदीर्ण कर !

आज तीसरे विश्व युद्ध की भय आशंका
गरज रही इन भीम घनो मे हृदय विदारक !
राष्ट्रो के कटु स्वार्थ, सत्व धन बल की तृष्णा
समर सगठित पुनः हो रही भू भागो मे ! !
अभी अभी फासिस्त शक्ति के युग दानव को
लुंठित, दर्प दलित करने जो देश धरा के
एकत्रित थे हुए प्रगति का व्यूह बना कर,
आज परस्पर के भय दुःस्वप्नों से पीडित
महा प्रलय के हेतु दीखते रण तत्पर वे ! !

पूंजीवाद उठा हिसा का धूम्रकेतु ध्वज
लिए लोक सहार घोर अणु मुष्ठि मे विकट
फिर ललकार रहा धरती की हरित शांति को,
जन समुद्र के उर की नभ चुबी लहरों पर
दुरभिसंधि से शासन करने ! हाय, दुराशा ! !

लोक राष्ट्र भी भूल वृहद् जन साम्य योजना
आज नवल साम्राज्यवाद की मद लिप्सा से
बना रहे है सैन्य शिविर निज जन तत्रो को,—
घूम रही है धरा समर के घोर भँवर मे!
दम साधे है खडा भयकर अणु का दानव
भूव्यापी सहार, प्रलय हुंकार छेड़ने!!

क्या भारत इस भू विभीषिका से हो जागृत
बहिरतर सगठित नही होगा इस युग मे?
आत्म शक्ति का, विश्व चेतना का प्रतीक बन,
सौम्य, शात, भू कर्मनिष्ठ, जन मगल कामी,
मनुष्यत्व का प्रतिनिधि, दृढ, निर्भीक, अहिसक!

रूढ़ि रीतियो की इस मध्य युगीन धरा को
कौन पुनश्चेतन कर सकता आत्म दान से
जनगण के अतिरिक्त, भूमि के अधिकारी जो,
गौरव गरिमा के वाहक इस महादेश के?
नव जन जीवन के भूव्यापी प्राणज्वार मे
निश्चय हो सकते निमग्न ये अर्थ शक्ति रण
वर्ग समन्वय मे नव, शोणित रहित क्राति से!

(उद्बोधन सगीत)

कौन सुनेगा पर मेरे ये तूती के स्वर
इस भीषण तर्जन गर्जन, कटु चीत्कारों के
निर्मम युग मे, छाया चारों ओर जहाँ है
भय, संशय, नैराश्य, विषाद, उपेक्षा, निंदा
ईर्ष्या, स्पर्धा, अहंकार,—खर लौह शूल सा!

देख चुका हूँ अर्धशती अब, क्रमण कर चुका
वर्ष पचदश, दु:सह युग परिवेश से व्यथित,
किसी तरह मै ! सुहृदों के बाने मे मुझसे
मिले अनेको लोग, देश, भू राष्ट्र प्रतिष्ठित,
जन सस्थाए, लोक सघ बहु, व्यक्ति कनक घट,—
आत्म वंचना, द्वेष, कलह, स्वार्थो से पीडित,
पर उन्नति से क्षुब्ध, लुब्ध निज बौने बल पर !

कृमियो का उत्पात विटप ज्यों वट का सहता,
झेले है मैने निष्ठुर स्पर्धा के दशन
जीवन मन से कुठित सूने अस्तित्वो के !
किंतु नही मै भूल सका, मै महाकाल का
अमर पुत्र अवतरित हुआ हूँ सधिस्थल पर,
पार अनेको कर वन पर्वत मरुथल सागर
कटकमय, खंदकमय,—झंझावात तरगित,
विनय मूक मै चलता निर्जन शाति मार्ग पर
क्रीड़ा निरत कलभ सा, लाँघ शिखर युग के बहु !

कैसे तुम से कहूँ, आज मै अर्धशती के
ऊर्ध्व शिखर पर खड़ा मौन क्या सोच रहा हूँ !
उद्वेलित करती मुझको शत भाव तरगे,
प्रेरित करते रश्मि स्पर्श स्वप्नो के उर को !

याद मुझे आती फिर फिर उस महापुरुष की,
अभी अभी जो रजत शुभ्र चेतना शिखर सा
धरती पर विचरा था स्वर्ग विभा से मडित,—
अपनी मगल स्मिति से दीपित करता भूपथ !

दैन्य दासता के युग युग के बधन जिसने
भारत के काटे: दुर्धर साम्राज्यवाद से
हँस हँस लोहा ले, अजेय अस्त्रो शस्त्रों की
हिस्र शक्ति को किया पराजित सत्याग्रह से,
सौम्य अहिसा के सामूहिक मंगल बल से!

एकाकी, निज आत्मशक्ति से जिसने निर्भय
भौतिकता यात्रिकना के दुर्मद असुरो को
किया निरस्त, जगत को दे सदेश सत्य का,
शाति, अहिसा का, श्रेयस्कर आत्मिक बल का!

आदोलित जन-युग दर्पण है मानव मन का,
शात उसे कर सकते केवल उस युग नर के
सत्य अहिसा के आदर्श, अमर, युग पूरक!
सदाचार की रजत रश्मियो से शुभ मडित,
विनय त्याग नय शोभित, लोक कर्म अनुप्राणित,
सूर्य शुभ्र व्यक्तित्व एक दिन आत्म पुरुष का
भू मानस में स्वत. प्रतिष्ठित होगा निश्चय!

जीवन मन की क्षुधा तृषाओ की चीत्कारे,
अर्थ शक्तियो, संस्कृति धर्मो के संघर्षण
विश्व ऐक्य में, लोक साम्य मे बँध जाएँगे
युग मानव मे सयोजित, व्यक्तित्ववान् हो!
धरती का विस्तार हुआ ही इस प्रकार है
कर सकते संहार नही भू जीवन का जन!

प्रेम मनुज को करना होगा भ्रातृ मनुज से,
देशों को देशो से, तत्रो को तत्रो से,
ईश्वर का आवास जगत, मदिर है जन तन,
रूपातर होगा ही अधोमुखी तृष्णा का
अमृत चेतना मे, अतर्मुख, ऊर्ध्व गमन प्रिय!
गूँज रहे है अभी देश, पुर पथ, गिरि सागर
उस युग मानव की महिमा के जय निनाद से,
गूँज रही प्रतिध्वनियाँ कभी न मिटने वाली!

(वाद्य सगीत : जन गीत)

जय विराट् युग मानव जय, जय!
स्वर्गदूत तुम उतरे भू पर
आत्म तेज मे विचर निभय!

सात्विकता के रजत शुभ्र तन
साधन तप के स्वर्ण शुभ्र मन,
नव युग जीवन के प्रतीक बन
विहँसे तुम, उर क अरुणोदय!

रक्त पक इस मर्त्य धरा पर
प्रथम बार लाए तुम निर्जर,
रक्त हीन रण जन श्रेयस्कर
जिससे हो भू स्वग अभ्युदय!

(करुण वाद्य सगीत)

सन् इक्यावन

हा दुर्दैव, अतीत कथा सी अर्धशती अब
हुई व्यतीत, बनी इतिहास! किंतु भूमन का
उद्वेलन रुक सका नही! उच्छ्वसित सिन्धु सा
पीट रहा मुख युग जीवन दारुण हाहा कर
मानव उर की बज्र दभ पाषाण शिला पर!

उतर नही पा रही जनों मे नव्य चेतना
भू रचना के उर्वर स्वप्नो से उद्दीपित,
विजय नही पा सका मनुज निज भौतिक मद पर
राष्ट्र वर्ग के, जाति वर्ण के रिक्त गर्व पर!!
विश शती का महाज्ञान विज्ञान प्राप्त कर
महानाश के अध गर्त की ओर सभ्यता
आज बढ रही हृदय शून्य हो, भ्रमित बुद्धि हो!
तर्कों वादो वर्गों के भेदो मे खंडित,
यत्रों से शोषित, जन तत्रो मे आदोलित,
क्षुधा तृषा श्रम पीड़ित, तमस अविद्या मूर्छित,
रेंग रहा युग भग्न रीढ़ पर आहत अहि सा
घूम घूम फिर घोर वृत्त मे महानाश के!!
बँटा विरोधी शिविरो मे है मानव जीवन,
विश्व शक्तियों का है हुआ विभाजन निर्मम;—
लोक समन्वय, विश्व ऐक्य होगा ही निश्चय
उत्तरार्ध कर रहा प्रवेश नया युग जग में!

उत्तर शती

(आशाप्रद वाद्य सगीत)

जिस युग ने है दिए मार्क्स-से भौतिक चिन्तक,
श्री अरविन्द सदृश द्रष्टा, भू स्वर्ग विधाता,
लेनिन गांधी से जन अधिनायक, जो निश्चय
भिन्न परिस्थिति, भिन्न प्रकृति मानव पदार्थ पा,
निज क्षेत्रों के रहे विधायक, जन उन्नायक,—
नव युग के पतझर वसत-से, नव बीजो से
गर्भित, नव जीवन से मुकुलित,—महाप्राण मन !
जिस युग मे वैभव अपार सचित कोषो मे,
देश काल को किए ज्ञान विज्ञान हस्तगत,
वाहित करती विद्युत् क्षण मे निखिल विश्व मन
जिस युग मे, वह आत्म पराजय से क्यो पीडित ?
क्यो उसमे सतुलन नही आ सका अभी तक ?
क्या है इसका कारण ? क्यों अधिविश्व क्राति है
छाई भू जीवन, युग मन मे ? शोचनीय यह ! !

(स्वप्नवाहक वाद्य सगीत)

देख रहा मै मन क्षितिज मे युग स्वर्णोदय
मानव भावी का, अभिनव किरणो से दीपित,
विश शती का जनसुख-मांसल उत्तर यौवन
निखर रहा निज भौतिक आध्यात्मिक वैभव मे !

धीरे धीरे अर्थ व्यवस्था मे धरणी के
युग वाछित सतुलन आ रहा, भौतिक सत्ता
मानवीय बन, नव चेतन आकार धर रही !

पूँजीवादी ' लोक साम्यवादी देशो के
वातायन खुल रहे भाव विनिमय के व्यापक,
हृदय द्वार खुल रहे, विचारो से नव मुकुलित,
भू जीवन के आवागमन हेतु दिग् विस्तृत !

नव युग के आर्थिक नैतिक विधान के युगपत्
नव निर्मित हो जाने पर, नव मानवता की
स्वर्ण चेतना ध्वजा उड रही गिरि शिखरो पर,
सागर के उल्लसित वक्ष, प्रहसित अबर मे !

(विजय वाद्य सगीत)

दैन्य दुःख मिट गए, भर गए धरणी के व्रण,
आनन की धुल गई कलुष कालिमा युगो की,
मानस वैभव से मुकुलित हो उठे दिगतर,
संस्कृति के सोपानो पर आरोहण करता
जनगण का मन, देवो का ऐश्वर्य बँटाने ! —
समुल्लसित गाते नर नारी भू जीवन के
विश्व प्रीति के गीत, भाव स्वप्नो से झकृत !

(वाद्य संगीत तथा जन गीत)

निखर रहा मनुज नवल,
निखर रहा मनस् नवल !
जीवन के वारि चपल,
विहँस उठा हृदय कमल !

खुले रुद्ध लोक द्वार,
मुक्त वचन जन विचार,
बरस रही आर पार
ज्योति प्रीति धार तरल !

श्री हत गत सौध धाम,
कुसुमित जन वास ग्राम,
मानवता पूर्ण काम
युक्त धरणि हुई सकल !

नवल चेतना प्रकाश,
जीवन मन का विकास,
मानवीय भू निवास,
बरस रहा जन मगल !

(तानपूरे के स्वर)

सन् इक्यावन

उतर रही अधिमन के नभ से नव्य चेतना
स्वर्ण शुभ्र ऊषा सी, जन मानस धरणी पर,
चीर रहे है रश्मि तीर शत ज्वाल स्पर्श से
भू जीवन के जड तम को, स्वर्णिम चेतन कर !

उतर रहे स्वर्दूतों-से स्मित पंख खोल कर
नव आशा उल्लास, ज्योति सौन्दर्य, प्रीति सुख !
बरस रही है रजत मौन स्मित शांति चतुर्दिक्,

जन मगल, श्रद्धा विश्वास,—शुभ्र पावनता,
मानव भू पर,—देवो के आशीर्वाद सी !
आज प्रसन्न हुआ घटवासी मानव ईश्वर
मानव कर्मो से, जग जीवन व्यापारो से !

(प्रसन्न गभीर वाद्य संगीत)

यह परिवर्तनशील जगत है लीला का स्थल
दिव्य चेतना का, जो अतरतम मे निवसित,
मन, जीवन, जड भूत अश है उसके निश्चय,—
वह सब मे है व्याप्त और सब से है ऊपर !—
बाह्य उपकरण उपादान ये मात्र प्रकृति के
चिर विकास क्रम मे है, सभी परस्पर आश्रित,
एक दूसरे के पूरक, पोषक, उद्धारक !

जड़ चेतन की इस विराट् क्रीडा के स्वामी
मानव के घटवासी भी है रे नि.संशय,
प्रस्तुत होता लोक-पात्र जब धारण के हित
अंतस्तल से उठता ज्वार नवल वैभव का,
चेतन कर जो मन के जीवन के सात्रय स्तर
मज्जिन करता भूत सृष्टि को, नव कल्पित कर !
भूतों की अतर पुकार से सहज विद्रवित
उन्हें उठाना आत्मिक मन के सोपानों पर
अभिनव जीवन सबधों, मन के मानों मे
उन्हें पुन: परिवर्तित, परिवर्धित, विकसित कर !

धन्य अभेद्य रहस्य सृजन का ! विश शती भी

महाकाल के अतल वक्ष स्पंदन से प्रेरित
उठ उत्ताल क्षितिज चुबी भूधर तरग सी,
प्लावित करती जीर्ण धरित्री के विषण्ण तट
जन युग की अद्भुत विराट् जीवन शोभा मे,–
सिन्धु मग्न कर विगत युगों के म्लान चित्र को !

(युग परिवर्तन संगीत)

मंगलमय है जीवन की केन्द्रीय चेतना,
जन मगल का धाम बने यह मानव धरणी !
सृजन शील हो मानव मन,—स्रष्टा निश्चय ही
निर्माता से है महान् जो सूक्ष्म द्रव्य से
बुनता नव सौन्दर्य प्रीति आनद के वसन ,
मानव आत्मा के हित,—शिल्पी स्वर्ग का अमर !

संयोजित हों मानव के आदर्श कर्म नित,
सयोजित वाणी विचार आचरण जनों के,
अतः संयोजित व्यक्तित्व बने मानव का,
श्री शोभा का अमर धाम हो मनुज लोक यह !

(मगल संगीत · समवेत गान)

मगल, जन मगल हो !
मगल मय का निवास
मानव हृत् शतदल हो !

प्रीति ग्रथित हो जन जन,
ज्योति द्रवित जनगण मन,

वैभव नत जन जीवन,
शोभा स्मित भूतल हो !

नारी नर हों समान
कर्म निरत, लोक प्राण,
जग को दे आत्म दान
जन हित जन श्रम फल हो !

शांत हो समर प्रमाद,
शात रिक्त तर्कवाद,
जय जीवन हो निनाद,
मुखरित दिङ् मंडल हो !

३१ दिसबर, १९५०)

शुभ्र पुरुष

'शुभ्र पुरुष' महात्मा जी के तप पूत व्यक्तित्व का शुभ्र प्रतीक है। महात्मा जी भारतीय चेतना के आधुनिकतम रजत संस्करण है। प्रस्तुत रूपक उनकी जन्म तिथि के अवसर पर लिखा गया था। यह जनगण मन अधिनायक गाधी जी के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति युग की विनम्र श्रद्धांजलि है।

स्त्री पुरुष स्वर

जनगण

(उत्सव वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

राजहस भरते उडान शुचि शुभ्र चतुर्दिक्
श्वेत कमल की पखडियाँ बरसा जन पथ पर,
स्वर्णिम पखो की शत उज्वल आभाओ से
नव स्वप्नो की दिव्य सृष्टि कर भू मानस मे!
विचरण करती व्योम कक्ष मे सुर बालाएं
ज्योत्स्ना का रुपहला रेशमी अचल फहरा,
हँसता शारद चंद्र घनो के अंतराल से
शुभ्र चेतना ज्वार उठा जीवन सागर मे!

रजत घटियाँ बजती अबर मे कलध्वनि भर
झरते अश्रुत स्वर ताराओ की वीणा से!
हिम शिखरो पर शशि किरणों की छायाएँ कँप
फहराती शत रग ग्रथित बदनवारो सी!
आज चिर स्मरणीय दिवस है शुभ्र पुरुष की
वर्षगाँठ का: धरती पर अवतरित हुआ जो
नव युग की आत्मा बन कर जन मगल के हित!
सदाचार के शुभ्र चरण धर जिसने भू को
फिर चिर पावन किया अमर पद चिह्नो से निज!
जन्मोत्सव है आज मनाते हर्षित सुर नर
विश्व प्रकृति के प्रागण मे स्मित पुष्प वृष्टि कर!

जय निनाद से मुखरित है जन भारत का नभ,
फहराता है मुक्त तिरगा रंग तरगित,—
मगल गायन वादन से गुजित है भू तल!

(मंगल वाद्य ध्वनि : समवेत गान)

जय जय हे, युग मानव, जय हे!

स्वर्ग शिखर से विचरे भू पर
आत्मतेज मय तुम निर्भय हे!

कोटि जनों के कंठ गान बन
कोटि मनो के मर्म प्राण बन
जन जीवन प्रागण मे लाए
तुम नव अरुणोदय हे!

सत्य खोजने आए जग मे
स्वर्ग लुटाने जन के मग में,
देवों का बल लाए सँग मे
जय चिर मंगलमय हे!

तप से पावन स्वर्ण शुभ्र तन
सत्य-शुभ्र सत्कर्म वचन मन,
स्वर्ग धरा का करने आए
शुभ्र पुरुष, परिणय हे!

(हर्ष वादन)

स्त्री स्वर

पराधीन थी सदियों से जब स्वर्ण धरा यह
दैन्य दासता के शृंखल जकडे थे तन को;
घोर अविद्या के तम से पीडित थे जनगण,
रूढ़ि रीति के प्रेत युद्ध करते थे मन मे !

घेरे थे विश्वास अंध आकाश बेलि-से,
मुड मुंड मे थी विभक्त लघु लोक चेतना :
स्वार्थो मे रत वर्ग, क्षुधित शोषित थी जनता,
पद लुठित जीवन गौरव, मृत मानव आत्मा !
छाई थी जब विकट निराशा की निष्क्रियता,
वीर्यहीन थी भारत भू, भूपति विलास रत,—
प्रकट हुए थे लोक पुरुष तुम आत्म तेजमय
अंधकार को चीर हुआ हो नव स्वर्णोदय !

देख धरा को तमोग्रस्त, तुम करुणा विगलित,
जीवन रण मे बने दिव्य सारथि फिर जन के,
महा जागरण मंत्र उच्चरित कर श्री मुख से
युग युग से निद्रित, जीवन्मृत महाजाति को
जागृत तुमने किया पुन. निज रहस शक्ति से !
स्वाभिमान भर जन मे, क्षण मे किया सगठित
नव्य राष्ट्र में उन्हे, स्वर्गवत् मातृभूमि के
प्रीति पाश मे बाँध, विरत कर लघु स्वार्थो से !

महापुरुष, निज अभय दान से नव्य प्राण भर,
कंकालों को दिया मनुज का गौरव तुमने,
युग युग के घन अंधकार से बाहर लाकर
मृत्युभीत जनगण को दिखलाया प्रकाश नव !
और एक दिन प्राणोद्वेलित जन समुद्र को
मुक्त तिरंगे के नीचे समवेत कर पुन.
उन्हें अहिंसात्मक अद्भुत रण कौशल सिखला
छिन्न कर दिए तुमने युग के पाश पुरातन !
एक रात में मौन गगन हो उठा निनादित
अगणित कंठ रटित वन्देमातरम् मंत्र से !

धन्य सिद्ध जन नायक, तुम कर गए पराजित
चिर अजेय साम्राज्यवाद की लौह शक्ति को
क्षण में, सौम्य अहिंसा के मंगलमय बल से,—
प्रेमामृत से गरल घृणा का अपहृत करके !
सिन्धु तरंगों-से, गर्जन भर भारत के जन
आज तुम्हारा गौरव गाते हर्ष उच्छ्वसित !

(स्तवन वाद्य : समवेत गान)

जय जन भारत भाग्य विधाता,
लोक मुक्ति वर दाता !
प्रजातंत्र भारत के जनगण
गाते गौरव गाथा !

जय स्वतंत्रता के रण नायक,
महाजाति के नव उन्नायक,

भू गौरव, जन राष्ट्र विधायक
जय युग मन के ज्ञाता !

वीर, अहिंसा रत, व्रतधारी,
धीर, सत्य के असि पथ चारी,
दैन्य दासता के भय हारी
जय जीवन तम त्राता !

श्रद्धांजलि देते नर नारी
जय जय राष्ट्र पिता बलिहारी,
तप पूत मन, जन हितकारी,
नव जीवन निर्माता !

(अभिवादन सगीत)

पुरुष स्वर

धन्य हुई यह मातृ धरा : युग लक्ष्मी फिर से
आज इसे अभिषेकित करती जनगण मन के
सिंहासन पर : अभिनदित करती नव युग की
ऊषा, इसके गौरव दीपित रजत भाल पर
स्वर्ण शुभ्र किरणों का जगमग ज्योति मुकुट धर !

वृद्ध देश, हिम श्वेत श्मश्रु स्मित, शोभित जो नित
पुरुष पुरातन सा विकास प्रिय इस पृथ्वी पर,
संजीवन पा आज जनों का यौवन उसके
मूर्तिमान हो रहा पुन. नव लोक तंत्र में !
जय निनाद करता जन सागर उमड़ चतुर्दिक्

हर्ष तरगित अपने शत शत शीश उठाए,
फहराता विजयी तिरग ध्वज इद्रधनुष सा
दिग् दिगंत मे रग छटाए बरसा अगणित,—
पुष्प वृष्टि करते हो ज्यों नभ से फिर सुरगण !

महाभूमि यह, जिसके श्री विराट् प्रांगण मे
प्रथम सभ्यता विहँसी भू पर भू प्रकाश सी,
जिसकी निभृत गुहाओ मे पहिले मनुष्य को
आत्मोन्मेष हुआ : युग द्रष्टा ऋषिगण विचरे
स्वर्ग शिखा ले जहाँ सत्य की अमर खोज मे :
जिसके ज्योतिर्मय मानस पलने मे पलकर
धर्म ज्ञान संस्कृतियाँ शतशः फैली जग मे,
जिसके दर्शन के स्फटिकोज्वल शुभ्र सौध में
स्वत. अवतरित हो मंगलमय पुरुष परात्पर
वास कर रहे मूर्त सत्य-से जन मन नभ मे :
राम कृष्ण गौतम लोटे जिसकी शुचि रज पर,—
अभिवादन करते जनगण उस दिव्य भूमि का
आज पुनः दिक् प्रतिध्वनित उल्लसित स्वरों मे—
वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम् !
तपोभूमि यह, राजतंत्र के युग मे जिसने
राम राज्य का पूर्णादर्श दिया जगती को,
आज असंख्य विमुग्ध लोक नयनों से निर्मित
नव युग तोरण से प्रवेश कर रही पुनः वह
जन मन दीपित धरा चेतना के प्रागण में,

झाड़ फूँस के भग्न घरौदों को, युग युग से
दैन्य अविद्या के तम से जो त्रस्त ग्रस्त है !
नंगे भूखे रुग्ण अस्थि पंजर गत युग के
जहाँ रेंगता भार ढो रहे भू जीवन का
वर्ग सभ्यता के उस निचले नरक मे, जहाँ
अन्न वस्त्र का घोर अभाव रहा अनादि से,
और सभ्यता संस्कृति की स्वर्ग-स्मित किरणे
पैठ न सकी जहाँ, जीवन आह्लाद कभी भी
पहुँच नही पाया, जन मन का नीरव रोदन
मात्र हृदय सगीत रहा उच्छ्वसित, अतद्रित !

आज तुम्हारा नव भारत निज रक्त दान से
पुण्य स्नात कर धरती के जन का विषण्ण मुख
सर्व प्रथम सौन्दर्य प्रसन्न करे मानव को !
उसकी चिर वसुधैव कुटुबक मातृ क्रोड़ मे
एक अहिंसक मानवता ले जन्म आत्म स्मित,
नई चेतना की प्रतिनिधि हो जो भू के हित !
विविध मतों, वर्गो, राष्ट्रों मे बिखरे जन को
मनुष्यत्व में बाँध नवल भू स्वर्ग रचे वह !
जीवन का ऐश्वर्य प्रेम आनंद उतर कर
अतर्मानस से, महिमा मूर्तित हों जिसमे :
युद्ध दग्ध जन-भूपर व्यापक लोक तंत्र का
नव आदर्श करे स्थापित वह सर्व समन्वित,
अभिनव मानव लोक सृजन कर नर देवों हित !

युग युग तक गावे भारत जन एक कंठ हो
जनगण मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता !

(स्तवन संगीत : भारत वंदना)

जयति जयति ज्योति भूमि,
जय भारत ज्योति देश !

ज्योति शिखर हिमवत् मन,
ज्योति द्रवित सुरसरि तन,
ज्योतित कर धरणि सकल
हरे विश्व तमस क्लेश !

उठो, उठो, नवल तरुण,
तिमिर चीर जगो अरुण
भेद भीति तजो, बँधो
लोक प्रीति में अशेष !

ज्योति पुरुष खड़े द्वार
तुम्हे फिर रहे पुकार,
स्वर्ग हव्य, करो दान
उत्सुक जग के प्रदेश !

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

नग्न नृत्य करती थी हिंसा जब पृथ्वी पर
भौतिकता से जर्जर था जन भू का जीवन,

महानाश का पावक बरसाता था अंबर,
तुमुल रण ध्वनि से कँपता था दीर्ण दिगंतर !

राष्ट्रों के कटु स्वार्थो से, स्पर्धा लिप्सा से
दुर्वह था जब जन धरणी मे जीवन यापन,
घोर अनैतिकता छाई थी मनोजगत् मे,
बिखर रहे थे शिखर सनातन आदर्शो के,—

सदाचार की रजत शिखा ले, आए थे तुम
युग प्रतीक बन भारतीय चेतना के पुन,
सत्य साम्य से मार्ग प्रदर्शन करने जन का,
अमृत स्पर्श से आहत जगती के व्रण भरने,—
मधुर अहिसा का सदेश सुनाने भू को !
धन्य मर्त्य के अमर पांथ, तुम निखिल धरा को
बाँध गए नव मनुष्यत्व के स्वर्णपाश मे !

(आवाहन सगीत : समवेत गान)

शुभ्र चरण धरो पाथ,
शुभ्र चरण धरो !
अकित कर ज्योति चिह्न
जीवन तम हरो !

विश्व वारि हैं अशांत
जन जीवन ध्येय-भ्रांत,
कर्णधार बनो, धीर,
क्षुब्ध नीर तरो !

आर पार अधकार,
रुद्ध आज हृदय द्वार,
व्यथा भार हरो देव,
भेद अमिट भरो !

मगलमय तुम उदार,
सुनो आर्त जन पुकार,
पावक की अजलि भर
वितरण हवि करो !

(तान पूरे के स्वर)

स्त्री स्वर

धन्य हुई जन धरणी यह, अवतरित हुए तुम
मर्त्यलोक में फिर देवोपम गरिमा लेकर,
विचरे मेरु शिखर-से नव किरणों से भूषित
शुभ्र काय मन, नव्य चेतना की ज्वाला को
जन मन में दीपित करने, करुणा प्रेरित हो !

बाँध गए नव सस्कृति मे तुम विश्व जनों को
मनुष्यता का मुख नव महिमा से मंडित कर,
नर चरित्र का रूपांतर कर, जन गण मन को
श्रद्धा से पावन, धरणी को स्वर्ग स्नात कर !

किन शब्दों में श्रद्धांजलि दें आज हृदय की,
देव, महामानव, हे राष्ट्र पिता हम तुमको !

वाष्पाकुल है नयन, हर्ष श्रद्धा गद्गद स्वर,
प्रीति प्रणत शत शत प्रणाम हो स्वीकृत जन के !

(स्तवन संगीत : समवेत गान)

जय नव मानव, जय भव मानव !
स्वर्ग दूत नव मानवता के,
विचरो ज्योति शिखा ले अभिनव !

प्रीति पाश मे बाँधो जन मन,
श्रद्धा पावन हो जन जीवन,
बनो शुभ्र विश्वास सेतु तुम,
शांत सकल हो भव के विप्लव !

स्वर्ग हृदय हो जन मे स्पदित
स्वर्ण चेतना से भू मडित,
अमृत स्पर्श से हरो मृत्यु तम,
जन मगल हो, जीवन उत्सव !

शुभ्र सत्य का हो जन मन पथ,
शुभ्र अहिसा का जीवन व्रत,
विश्व ग्लानि मे नव प्रकाश बन
निखरो, शुभ्र पुरुष, युग सभव !

२ अक्तूबर '१९५०)

विद्युत् वसना

विद्युत् वसना स्वाधीनता की चेतना का रूपक है, जो स्वाधीनता दिवस के अवसर पर लिखा गया था। स्वाधीनता ध्येय नही, साधन मात्र है : ध्येय है अंतर्निर्भरता तथा एकता। इस युग मे जन स्वतत्रता की उपयोगिता लोक एकता तथा विश्व मानवता के निर्माण ही मे चरितार्थ हो सकती है : यही इस रूपक का सदेश है।

स्त्री पुरुष स्वर
विद्युत् वसना
जनगण

(मेघ घोष के साथ तुमुल वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

यह विद्युत् वसना का रूपक है साकेतिक,
नव युग का सदेश भरा जिसमे ज्योतिर्मय,
स्वतंत्रता की अमृत चेतना, जो मेघों के
रध्रों से है फूट रही जन मनोगगन मे,
आज उतरने को वह आतुर, जन धरणी के
जीवन के प्रागण मे, विद्युत् निर्झरिणी सी,—
अंधकार से भरे गह्वरो को पृथ्वी के
नव प्रकाश रेखाओं से आदोलित करने !

आज टूटने को है युग की दुर्धर ज्वाला
जन मन के शृंगों पर पावक के प्रवाह सी,
जाग रहे भूरज मे सोए अग्नि बीज फिर
अभिनव इच्छाओ के ज्योति प्ररोहो मे हँस !
उद्वेलित धरणी का उर, युग की आभा का
अभिवादन करने को, जय नादों से मुखरित !

(जय निनाद)

अपनी शुभ्र छटा के अचल में लपेट कर
अमर सँदेशा लाई है स्वाधीन चेतना
ज्वलित स्वर्ण शोभा से मंडित, जनगण के हित,—
सावधान हो सुनें मर्त्य भू के वासी जन !

(उद्‌बोधन वाद्य संगीत के साथ दूर से आते हुए करुण समवेत गीत के स्वर)

गीत

घोर तमिस्रा छाई,
कौन सँदेशा लाई ?

घुमड़ घटाएँ घिरती प्रतिक्षण
गगन क्रुद्ध हो भरता गर्जन,
अतरिक्ष के उर मे किसने
रक्त ज्वाल सुलगाई ?

झिल्ली क्या बज उठती झन झन
जगा गुहाओ मे युग रोदन,
गूढ़ घाटियो मे जीवन की
अँधियाली गहराई !

बिजली रह रह करती नर्तन
ज्योति अध कर जन के लोचन,
फिरती उर मे आवेशो की
उठ काली परछाई !

बदल रहे जन, बदल रहा मन,
बदल रहा युग औ' युग जीवन,
प्रलय सृजन की उन्मद बेला
अब अकूल लहराई !

(तानपूरे के अशात स्वर)

स्त्री स्वर

हर्ष रुदन करता धरती का कातर अंतर,
उमड रहे है महा बलाहक सृजन छटा स्मित,
ककालो की पग ध्वनि से कँप उठता भू तल,
जीर्ण अस्थि पजर बढते है विजय ध्वजा ले !

महानाश के खँडहर पर जन मन उन्मादिनि
नाच रही है विद्युत् वसना लोक चेतना
अट्टहास भर, शत स्फुलिग बरसा अबर से,
नव जीवन के अग्नि प्ररोहो मे रोमांचित !
गाती है उन्मत्त गीत वह मंद्र स्तनित भर !

(मेघ गर्जन तथा मंद्र गभीर वाद्य ध्वनि)

विद्युत् वसना

जन आकाक्षा के शिखरों पर
पग धर मै युग तांडव करती,
चिर अधकार से ज्योति खीच
युग अंधकार का भय हरती !

मैं वाष्प धूम के अणुओं को
निज स्पर्श ज्वाल से चटकाती,
शत बाधा बंधन के श्रृंखल
उन्मत्त हर्ष से तड़काती

मैं प्रलय ज्वार सी उठती हूँ
धरती स्वतन्त्रता मे न्हाती,
मैं नाश सृजन के पखों मे
आँधी सी उड़, आती जाती !

(झंझा सूचक ध्वनि प्रभाव)

जन स्वर

तुम आओ, शत बलिदान यहाँ
अभिवादन के हित तत्पर है,
तुम आओ, शत शत प्राण यहाँ
अभिलाषाओं से जर्जर है !

तुम उतरो, नव आदर्शो के
शिखरों पर किरणे बरसाओ,
उतरो, उर्वर तलहटियों मे
फिर ज्योति बीज नव बिखराओ

आओ हे, तुम जन संस्कृति के
पथ को दिग् विस्तृत कर जाओ,
युग युग से पंक भरी भू को
सौन्दर्य ज्वार मे नहलाओ !

विद्युत् वसना

मदिरा की ज्वाला सी मादक
मै जाग्रत् विस्मृति लाती हूँ,
महलो को खँडहर, खँडहर को
फिर उठते महल बनाती हूँ !

पतझर के वन को मासल कर
नव रूप रग भर जाती हूँ
मूकों को कर वाचाल,
पंगुओं को चढना सिखलाती हूँ !

जन स्वर

तुम आओ, मन के धनी यहाँ
तन के भूखे करते स्वागत,
तुम देखो, युग युग से सोए
रज के सपने होते जाग्रत् !

देखो हे, तन मन के शोषित
अब तोड़ रहे दुख के बधन,
नव मानवता मे जाग रहे
मिट्टी के पुतले नव चेतन !

(वाद्य स्वर परिवर्तन)

पुरुष स्वर

अधकार बढता जाता है, युग प्रभात है
होने को निश्चय ! सहसा मर्मर हर्हर् ध्वनि
फूट पडी है नग्न डालियो मे जन वन की !

मलय पवन तूफान बन रहा ! सर् मर् चर् मर्
टूट रहे है जीर्ण खोखले वृक्ष ठूँठ अब
भूमिसात् हो ! नाच रहे झर झर कर पत्ते
शुष्क पीत मृत, घूम घूम शत आवर्तों मे !
धूलि कणो के भँवर उठ रहे, लोट लोट कर
धूसर भुजगों-से झझा कपित धरती पर !

(ध्वनि प्रभाव)

अधड़ आया, अधड़ आया, घोर बवडर !
कोलाहल से बधिर हो रहे विश्व के श्रवण !
भूमि कप यह, हिल हिल उठती भू की जड़ता,
काँप रहे पर्वत, टकराते शृग अग्नि मुख !
स्फीत तरगो पर चढ रही तरगे उन्मद,
फेनों के क्षण-अट्टहास्य मे उबल रहा जल !
आधि व्याधि कटु दैन्य दु ख का फटता कर्दम,
टूट कगार रहे, छितराते बालू के कण !

धूल धुध ! उड रहे युगों के द्वन्द्व पराजय,
हानि लाभ, शत जन्म मरण ! छा गया चतुर्दिक्
मिट्टी का बादल ! धरती हो नई बन रही
नाच नाच नव युग परिवर्तन के इगित पर !
निखर रही है नई चोटियाँ, नई तलहटियाँ
दिग् विस्तृत, जीवन किटाणुओं से नव उर्वर !

(युग परिवर्तन सूचक घोर तुमुल संगीत : दूर से आते हुए समवेत स्वर)

दिग् हसने, अयि विद्युत् वसने!
अट्टहास से चकित दिगंतर,
शत प्रलयंकर दशने!
विद्युत् वसने!
अग्नि वृष्टि करता युग अंबर,
रक्त तरंगित जन मन सागर,
नाच रही तुम निर्मम तांडव
जन मद झंकृत रसने!
विद्युत् वसने!
स्वार्थों मे छिड रहा तुमुल रण
आज खुल रहे युग युग के व्रण,
उमड उठा भू का अवचेतन
अयि जीवन तम अशने!
विद्युत् वसने!

(तानपूरे के स्वर)

विद्युत् वसना

प्राणो के नीरद से आवृत
जगती का अंबर दिशा हीन,
मैं मुक्त चेतना हूँ उसकी
संघर्षो से दीपित नवीन!

वह सतरँग शोभा मे हँसता
शत आकाक्षाओ से मथित,
नव जीवन की हरियाली मे
झरता रहता करुणा विगलित !

मै उसकी आभा की अप्सरि
युग शिखरों पर नर्तन करती,
बजती चल पावक की पायल
जन मन मे रण गर्जन भरती !

मै अग्नि बीज बोती भास्वर
उपजाती लपटो की खेती,
मै महा प्रलय के पखो की
छाया मे सर्जन को सेती !

(मेघ गर्जन, झझा का शब्द और कोलाहल)

स्त्री स्वर

हहर रही है जन स्वतत्रता की खर झझा,
बीज बो रही जो पतझर मे नव वसंत के :
क्या है इसका ध्येय ? गरजती हुई घटा यह
सतरंगी ले विजय ध्वजा किस मनोल्लास की
उमड़ घुमड़ घिर रही जनों के मनो गगन मे ?
कौन महत् उद्देश्य, कौन प्रेरणा हृदय की,
जीवन की कल्पना कौन, अगणित जनगण को
एक प्राण कर चला रही है आज अतद्रित ?

बढते अडिग चरण असख्य, निर्भय अमोघ, दृढ़,
पदाघात से कपित कर धरणी का प्रागण,—
कँप कँप उठती युग युग की शका, कायरता,
हिल हिल पडते मनोलोक, गत आदर्शों के
शिखर बिखरते, धँसती भू मे रूढि रीतियाँ
शत कृमि कीटों से जर्जर, स्वार्थों से स्थापित !

(उत्तेजना द्योतक ध्वनि प्रभाव)

दुर्निवार कामना ! कौन सी महाशक्ति यह
जन समुद्र को है ढकेलती युग तोरण से
नव प्रभात के सद्य प्रज्वलित नव प्रदेश मे ?—
जीवन का सौन्दर्य, धरा का स्वर्णिम वैभव
जहाँ हँस रहा दिग् दिगत मे जन जन के हित !
कौन दिशा है वह ? मजिल है कौन वह नई ?
क्या आशय है लोक जागरण, लोक मुक्ति का ?
गाओ युग की वीणे, पावक के तारों से
नव ज्योतिर्मय, शांत, मधुर, स्वर संगति बरसा !

(मगल वादन : आकाश वाणी)

इस युग की स्वाधीन चेतना अभय बढ रही
लोक एकता, विश्व एकता के मदिर को !
साधन केवल जन स्वतत्रता,—मनुज एकता
लोक साम्य औ' विश्व प्रेम ही प्राप्य ध्येय है !
जनता का बल युग सबल है ! मनुष्यत्व ही
जन बल की महिमा, जन गौरव का किरीट है !

जन स्वतंत्रता नही,—लौह सगठित जनों की
अतर् निर्भरता ही युग का परम लक्ष्य है!
बोलो जनता की जय, नव मानवता की जय!

(हर्ष वाद्य ध्वनि : समवेत गीत)

बरसो हे जन मन के बादल!
नव जीवन की हरियाली मे
हरसो हे नव स्वर्णिम उज्वल!

उमडो, श्यामल दृग हो अंबर
घुमडो, विद्युत् प्रभ हो अंतर,
गरजो हे, जय हर्षध्वनि भर
नव प्ररोह पुलकित हो भूतल!

सतरँग विजय ध्वजा धर छहरो
भू को बाँहो मे भर घहरो,
श्री शोभा के शस्य-हास्य से
सरसे जन भू में जन मगल!

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

मत्त लास्य कर रही गगन मे विद्युत् हासिनि
मत्त हास्य भर रही हृदय मे अतर्वासिनि,
उतर रही है ज्योति जाह्नवी नव्य चेतना
उभर रहा धरती का मन आवर्त शिखर बन,—
स्वागत देने नव्य प्रभा को,
धारण करने दिव्य विभा को!

विद्युत् वसना

(अभिवादन वाद्य सगीत : जन गीत)

ज्योति शिखावाही (जन)
प्रीति शिखावाही !

बादल दल गए बिखर
नवल क्षितिज रहा निखर,
विहँस उठा हृदय शिखर,
ऊषा मुसकाई !

ज्वाला के बढते पग
हँसता जन जीवन मग,
जग का प्रागण जगमग
देता दिखलाई !

अंधकार रहा भाग, रहा भाग,
ज्योतिर्मय उठे जाग, उठे जाग,
मृत्योर्माऽमृत गमय
जन चिर अनुयायी !

१५ अगस्त' ५०)

शरद् चेतना

शरद चेतना प्रकृति सौन्दर्य का कल्पना प्रधान रूपक है। समे धरती की ऋतुएं, हेमत, शिशिर, वसंत आदि, आकाश-वासिनी शरद ऋतु का अभिवादन करती है, जो पृथ्वी पर उतर कर चारो ओर श्री सुख शाति का सचार करती है। फूल, मुकुल आदि धरती के चराचर आनंद उत्सव मनाते है।

वाचक वाचिका

वर्षा हेमंत

ग्रीष्म, वसंत, शिशिर

प्रकृति, फूल

ीत)

(आकाश गीत)

शरद चेतना !
प्रीति द्रवित अमृत स्रवित
शुचि हिम हसना !

चद्र वदन, कुन्द दशन,
उडु स्मित सर उर चेतन,
स्वप्न पलक पद्म नयन,
नि: स्वर चरणा !

सौम्य स्निग्ध वयस कांति,
मूर्तिमती खड़ी शाति,
मिटी विश्व जनित क्लाति,
भू तम अशना !

स्वर्ग स्नात भू रज तन,
कौश शुभ्र कॉस वसन,
निखर उठा उर यौवन,
अंतर्वंचना !

घुले निखिल रूप रग,
धुले मधुर प्राण अग,
निर्मल जीवन तरंग,
कल्मष शमना !

गंध अनिल रजत श्वास,
तृण तरु पर मुक्त हास,
लहरों पर ज्योति लास,
सारस रसना !

वाचक

अब वर्षा का व्योम, बरस रिमझिम झड़ियो मे,
कोमल हरियाली मे हँस, बिछ गया धरा पर,
जौ गेहूँ के नवल प्ररोहो मे रोमाचित
कँप कँप उठती भू छायातप की लहरो मे !

रँग रँग के फूलों की हँसमुख उडती चितवन
इद्रधनुष छायाएँ बरसाती दिशि दिशि मे,
धरती की सौंधी सुगध से जिनकी सौरभ
प्राण शक्ति से मर्म भावना सी घुल मिल कर
समुच्छ्वसित कर देती मुग्ध हृदय को बरबस !

स्वर्ग कणो के शालि झूम झुक-नयन लुभाते
सहज सुहाते स्वच्छ रुपहले काँसो के वन,
मलिन वासना धुल सी गई सरित धारा की,
सरसी जल मे घुल सी गई नवल उज्वलता !

कुमुदों मे केन्द्रित हो निशि का अपलक विस्मय
कमलों मे खुल सौम्य दिवस के अंतर्लोचन,
फुल्ल चद्र का, स्निग्ध सूर्य का स्वागत करते !
चल खंजन नयनो से, कल चातक पुकार से
भू का सद्य. स्नात मनोरथ प्रकट हो रहा !

मौन मधुर लग रहा धूप का सुधर धुला मुख
अगो से लावण्य फूट सा पडता निश्छल,
डूब भावना मे नव यौवन की निर्ममता
कोमल सी पड गई,--मध्य वय के आग्रह से
मार्दवता आ गई मनोरम मातृ प्रकृति मे !

वाचिका

चिर रहस्यमय ताराओ का छाया पथ नभ
निज असख्य नयनो के विस्मय से हरता मन,
स्वप्नो के स्मित ज्योति प्ररोहों से दिक् पुलकित
व्योम हँस रहा दीप्त दिवौषधियो के वन सा !

निखर उठी नीलिमा, नयनिमा सी अनत की,
निखर उठी नीहार काति निर्वाक् शाति मे,
वृष्टि धौत नीलिमा रहस आभा से गुफित
महाजागरण सी सोई स्मित अतरिक्ष मे
निबिड अकपित जल सी निस्तल निश्चेतन की
महा चेतना के पावक से लगती गर्भित !

वाचक

चंद्रकला का मुकुट धरे निज ज्योति भाल पर
हीरक कनियों की शत ज्वालाओं से जगमग,
तारक लडियाँ गूँथ नील लहरी वेणी में
रजत वाष्प जलदों के सतरँग पंख खोल स्मित,
नवल शारदीया, सुँदर सुरबाला सी हँस,
उतर रही, स्वर्गंगा सी साकार गगन से !

व्योम वासिनी, सूक्ष्म स्वप्न देही आभा वह,
—दिव्य अदिति सी अतर्मन के रजत गगन मे,—
उतर रही भू पलको पर अनिमेष स्वप्न सी
शब्द स्वर रहित अंतरतम की तन्मय लय मे !
ज्योति द्रवित वह, जिसके स्वप्निल गीलेपन से
भीग रहे मन प्राण मौन शोभा मे मज्जित,
अमृत चेतना वह, जिसके अंतः प्रवाह मे
डूब रहे उर के तट, भाव तरग ध्वनित हो,
नीरव कलरव से गुजित हर्षातिरेक के !

(वाद्य सगीत)

वाचिका

फूलो की पंखडियो, कोमल रँग बरसाओ,
लोल लहरियो, सरसी उर मे लय हो जाओ,
तरु मर्मर, निज अस्फुट कपन मे खो जाओ,
ताराओं की पलको, झिलमिल कर सो जाओ !
प्रिय चकोर, तुम पृथ्वी के अँगार चुग जाओ,
शुभ्र हस पंखो, उड़ान बनकर रह जाओ—

शरद चंदिरा उतर रही धीरे धरती पर
भारहीन सुकुमार अगभगी मे ओझल,
निज अदृश्य पग धरती पखुरियो, लहरों पर,
स्वप्न स्पर्श सी पलकों पर, स्मिति सी अधरों पर !
देखो, फूलो पर हँसते अब रजत तुहिन कण
लहरो के अधरों को चूम रहे स्मित उड़गण,
झलक उठे पत्तो के करतल में मुक्ताकण,
ज्योत्स्ना के पद चिह्नों से अब अंकित भूतल !

भौतिक ज्योति नही है केवल शरद चाँदनी,
आत्म लीन वह अमर चेतना स्वर्ग लोक की,
अतिक्रम कर सब दिशा काल, तन मन के बधन,
आत्मोल्लास प्रदीप्त, हुई परिव्याप्त चतुर्दिक् !
मधुर प्रणय का स्वप्न हृदय की पलकों मे ज्यों
प्रथम बार मुसकाया सद्योज्वल विस्मय मे
नही भूमिजा वह, वैदेही भाव शरीरी,
उसके अचल की पावन छाया मे आओ,
फूलो की मृदु पलको, स्वप्नो से भर जाओ,
लोल लहरियो, नव लीला लावण्य दिखाओ !

वाचक

स्यात् हृदय की वीणा होती, तार प्रणय के,
कोमलता का स्पर्श, रुपहली गूँजों मे जग
सुँदरता झंकृत हो उठती नि.स्वर लय मे,
स्वर्गिक स्वर सगति बन उर के श्रवणो के हित,

मनोनयन तब कही देख पाते उस छबि को
शरद चद्रिका मे अरूप साकार हुई जो,
प्रीति ज्योति सी, स्वप्नो के अगो मे मूर्तित,
स्वर्ग धरा के भावो की सुषमा से भूषित !

(वाद्य सगीत)

वाचिका

परिक्रमा करती भू ऋतुएँ शरद विभा की,
बारी बारी से हेमंत शिशिर वसत आ,
ग्रीष्म और वर्षा, रगों से, धूप छाँह से
जल बूँदो से, हिम फुहार से करते स्वागत,
पिक चातक के, नृत्य मयूरो के कंठों से
अँभिनदन गा, शत नव लोध्र, कमल दल बरसा !

वाचक

सर्व प्रथम हेमंत कर रहा आत्म निवेदन,
भरा झुर्रियो से आनन, सकुचाया सा मन
काँप रहे मृदु अधर, वाष्प से आर्द्र है नयन,
घने कुहासे मे सा लिपटा उसका जीवन !
ठढा हो पड़ गया सकल उत्साह, क्लांत मन,—
ठिठका सा लगता नभ, ठिठुरा सा भू प्रागण !

(हेमत का गीत)

जीर्ण पलित पीत पात,
कपित हेमंत गात !

हैम धवल पक्व केश,
क्षीण काय, सौम्य वेश,
मंथर गति, मंद कांति,
नतदृग मुख वारिजात !

रजत धूम भरे अंग,
फूलों के उडे रंग,
सरसि मे न अब तरग,
शीत भीत श्वास वात !

मौन स्वल्प दिवस मान,
रवि मे ज्यो चद्र भान,
मुक्त अब न विहग गान,
अश्रु सजल हिम प्रभात !

सिमटे मन देह प्राण,
अधरो का राग म्लान,
प्राणो के निकट प्राण
दीर्घ स्वप्न भरी रात !

(वाद्य सगीत)

वाचिका

छोड श्वास फूत्कार धूलि के साँप नचाता
जरा जीर्ण जगती के पीले पात उडाता,
ध्वंस भ्र श करता सा क्रुद्ध शिशिर अब आता
झंझा पर चढ, थर थर कँपता, ओठ चबाता !

सी सी सीटी बजा, रुदन मे भरता गायन,
समदर्शिनी शरद का वह करता अभिवादन !

शिशिर का गीत

सन् सन् बहता समीर,
बेधते सहस्र तीर !
शिशिर सीत्कार भीत
कँपता रज का शरीर !

झरत मर शीर्ण पत्र,
गिरते कँप विटप छत्र,
विचर रहा दुर्निवार
क्रांति दूत सा अधीर !

बो रहा प्रचंड बीज
जड़ता पर खीझ खीझ,
जीवन के नव प्ररोह
विहँसें भू गर्भ चीर !

सिहर रहे तृण तरु खग,
सिहर रहा धूसर जग,
सिहर उठे भूधर पग,
सिहर रहा लहर नीर !

नग्न भग्न विश्व डाल,
सृजन ध्वस रे कराल,
सुलगें स्वर्णिम प्रवाल
मिटे निखिल दैन्य पीर !

वाचक

नव वसत आता अब अधरों मे भर गुजन,
सौरभ से पुलकित मन, फूलों से रजित तन,
नव भू यौवन सा, स्वप्नों से अपलक लोचन,
कुहू कुहू गा, प्राणो का सुख करता वर्षण!
शरद चेतना मे परिणत अब रंगों के क्षण
फूल बने फल, पर्ण काँस, परभृत मरालगण !

(वसत का गीत)

नव वसंत आया !
कोयल ने उल्लसित कंठ से
अभिवादन गाया !

रंगों से भर उर की डाली
अधर पल्लवो मे रच लाली,
पंखडियों के पख खोल स्मित
गृह वन मे छाया !

सौरभ की चल अलकें मादन,
फूल धूलि मे लिपटा मृदु तन,
नव किशोर वय, क्रीड़ा चचल,
अग जग को भाया !

मधुपों के सँग कर मधु गुजन
मंजरियो मे पिरो स्वर्णकण,
दिशि दिशि में नव फूल वाण भर
मन्मथ मुसकाया !

धरा पुत्र यह, फूलो के अँग
प्राणो मे इच्छाओ के रँग,
जीवन के श्री सुख वैभव मे
ऋतुपति कहलाया !

वाचक

अह, निदाघ बरसाता चितवन के पावक कण,
जग के प्राण तपाता, झुलसाता भू जीवन !
भू लुठित छाया, कुम्हलाया लतिका सा तन,
प्यासा जल अब, उडा भाप बनकर गीलापन;
प्रतिक्षण तप कर, जीवन से कर कटु संघर्षण
समदर्शी बन ग्रीष्म शरद का करता वदन !

(ग्रीष्म का गीत)

तरुण तापस वीर,
उग्ररूप, प्रचंड त्रिनयन सा
निदाघ गभीर !

धूलि से धूसर जटा घन,
मौन वचन, मुँदे विलोचन,
रुद्ध श्वास, सुखद तृणासन,
वस्त्र विरत शरीर !

तप रहे क्या व्योम भूतल
वह्नि लगती दाह शीतल,
तप्त कांचन देह निश्चल
ध्यान मे रत धीर !

दौडता पागल प्रभंजन
अग्नि के बरसा ज्वलित कण,
म्लान फूलो का लता तन,
शेष तट अब नीर !

रुद्र चक्षु कराल अंबर
कृश सरित, पकिल सरोवर,
तड़पते खग मृग, अगोचर
चुभ गया हो तीर !

वाचक

लो, वर्षा की घनश्यामल वेणी लहराई,
धरती को रोमाच हुआ, हरियाली छाई !
प्राणों मे अब जगा गहन जीवन उद्वेलन,
अबर मे गर्जन, दिशि दिशि मे विद्युत् नर्तन !
इंद्रधनुष मे हँसा गगन का सूना प्रागण
बर्हे भार मे खुला रंग चंचल भू जीवन !
स्निग्ध शरद का आँगन धो, निज दृग का अजन,
सोन बलाक स्वरो मे वर्षा करती वदन !

वर्षा का गीत

नीलांजन नयना,
उन्मद सिन्धु सुता वर्षा यह
चातक प्रिय वयना !

नभ मे श्यामल कुतल छहरा
क्षिति मे चल हरिताचल फहरा,
लेटी क्षितिज तले, अर्धोत्थित
शैल भाल जघना !

इच्छाएँ करती उर मंथन
चिर अतृप्ति भरती गुरु गर्जन,
मुक्त विहँसती मत्त यौवना
स्फुरित तडित दशना !

रजत बिन्दु चल नूपुर झंकृत
मद्र मुरज रव नव घन घोषित,
मुग्ध नृत्य करती बर्हस्मित
कल बलाक रसना !

बकुल मुकुल से कबरी गुंफित
श्वास केतकी रज से सुरभित,
भू नभ को बाँहों मे बाँधे
इंद्रधनुष वसना !

वाचिका

धरती की ऋतुएँ मिलकर करतीं अभिवादन
चद्रमुखी नभ की ऋतु का अनिमेष नयन हो,
विहगो के स्वर, सर के कमल, घनों का वादन,
भू के रंगों का वैभव अर्पण कर उसको !

रक्त जपा फूलों से रँगकर उसके पदतल
आम्र मौर का मुकुट, कुँई के कर्ण फूल रच,
हर सिंगार वेणी, बेला कलियो की माला
मधुपों से गुंजित कदब मेखला बाँधकर,
करतीं मानस पूजन वे स्वर्गीय विभा का !
हंसों के चल पखो से झल मद मृदु व्यजन,
ज्योतिरिगणो से जगमग द्युति नीराजन कर
मधुर स्तवन गाती वे ऋतुओ की रानी का,—
किरणोज्वल लहरो के पायल बजा रजत रव,
शिखी पिच्छस्मित परिक्रमा कर नृत्य मत्त हो !

शरद का गीत

अव शुभ्र गगन मे शुभ्र चंद्र
नव कुंद धवल तारावलि री,
अब शुभ्र अवनि मे शुभ्र सरसि,
सरसी मे श्वेत कमल दल री !
भू वासिनि ऋतुएँ अन्य सभी,
तुम नभ वासिनि चिर निर्मल री,
वे धरती की रज मे लिपटी,
तुम स्वर्गंगा सी उज्वल री !
अव काँस हास से श्वेत धरा,
सरसिज से सित सरिता जल री,
चल हंस पाँति से शुभ्र पवन,
शशि मुख से स्मित नभ मंडल री!

बेला जूही के फूल धवल,
हिम धवल कुंद कलियाँ कल री,
तुम चंद्र शिखा की स्नेह विभा
जो स्वर्ण शुभ्र चिर शीतल री !

आती जाती ऋतुएँ जग मे
कर जाती भू उर चंचल री,
तुम शरद चेतना स्वर्गोज्वल
बरसाती नित जन मगल री !
वे जीवन रंगों का मोहक
फैलाती छाया अंचल री,
तुम प्रीति द्रवित स्वर्गाभा सी
पावन कर जाती भूतल री !
तुम पारदर्शिनी, ज्योतिर्मयि,
अंतः शोभा मयि निश्छल री,
अस्पृश्य अदृश्य विभा उर की,
वे रूपमयी रज मांसल री !

वाचक

रजत नील जल मी अंबर सरसी की निर्मल
जिसमे स्वप्नों की अप्सरियाँ तिरती रहतीं,
अपनी ही आभा मे ओझल शरद चद्रिका
कोमलता सी, तन्मयता सी, दिव्य दया सी
विचर रही धरती पर सस्मित स्वप्न चरण धर,
शोभा के स्वर्गीय ज्वार मे डुबा दृष्टि तट।

मुग्ध धरा उर के भावों-से फूलों के शिशु
रँग रँग की स्मिति बरसा, गाते शरद वंदना !

फूलों का गीत

आओ हे हँसमुख फूलो, हिलमिल कर हम सब गावे,
शरद चेतना के आँगन मे उत्सव मधुर मनावे !
रग पँखड़ियों के पर फैला अबर में उड़ जावें,
रजत सुरभि के अलक जाल मे मारुत को उलझावे !
अपलक चितवन के स्मित चचल बंदनवार बँधावें
जन भू के पथ पर हँस हँस शत इंद्रचाप बरसावे !
तुहिनो के मोती किरणो मे पोकर हार बनावे,
डाल डाल पर उर स्वप्नो के मोहक जाल बिछावे !
फूलो का तन फूलो की बाँहो मे भर सुख पावे,
स्नेही मधुपों की मधु गुजन सुनकर प्राण जुड़ावे !

वाचिका

डूब रहा नभ, डूब रही दिशि, डूब रही भू,
एक अनिर्वचनीय महत् आनंद मे अमित,
द्रवित हो गईं निखिल रूप रेखा धरणी की,
लीन हो गईं अखिल असंगतियाँ जड़ता की,
विस्मय से अभिभूत प्रकृति के उर से उठता
जिज्ञासा से भरा मौन संगीत गगन को !

प्रकृति का गीत

क्यों हँसते रहते फूल मधुर, क्यो लहरे नित नाचा करतीं,
क्यों इद्रधनुष छायाचल मे किरणें छिप छिप सतरँग भरतीं ?

क्यों उषा लालिमा मौन सलज नव मुग्धा सी मन को हरती,
क्यो कुहू कुहू गाती रहती कोयल चिर मर्म व्यथा सहती?
क्यों अपलक तकते रे तारे, सपने देखा करती धरती,
क्यो शशि को बाँहों मे भरने सागर बेला उठती गिरती ?
निज सुख दुख की ही चिन्ता मे क्यो डूबी रहती है जगती
क्यो स्वप्नो के पर खोल न वह प्रिय तितली सी उड़ती फिरती?
जो घृणा द्वेष की अँधियाली इस धरती मे फैली रहती
तुम उर का प्यार उडेल उसे धो डालो हे, ज्योत्स्ना कहती!

वाचक

अंचल पकड प्रकृति का गाते नवल मुकुल दल
अर्ध खुले विस्मित नयनों से प्रथम बार ज्यो
निरख धरा की दुग्ध स्नात अत.श्री उज्वल !
हरित गौर भू उर पर सोया रजत नील नभ
स्वप्न देखता हो विराट् सौन्दर्य के अमर !

मुकुलों का गीत

हास लास हो हुलास,
सुरभित हो साँस साँस !

चाँदनी खिली अपार
स्वप्नों का उठा ज्वार,
मौन मुग्ध आर पार
शोभा श्री का बिलास !

प्रकृति कर रही विहार
उमड़ रहा अतल प्यार,
जगत रे नही असार
सुदरता आस पास !

चद्रमुख रहा निहार,
सिन्धु उर रहा पुकार,
प्राणो का यह निखार
पांथ, अब न रह उदास !

खोल रुद्ध हृदय द्वार,
गूँज उठे मूक तार,
जीवन रे वृथा भार
अंतर मे जो न प्यास !

उच्च हो सदैव ध्येय
मनः शक्ति हो अजेय,
शांति सौख्य अपरिमेय,
वरद शरद भू निवास ।

वाचिका

दुग्ध फेन सा, म्लान कमल सा, स्फटिक खंड सा
पावस का शशि उज्वल किरणो से मंडित हो
दमक उठा अब रजत वह्नि के ज्योति कुंड सा !
निखिल सृष्टि की शोभा का प्रतिमान रूप सा,
विश्व प्रकृति के चद्रानन सा चारु सुधाकर